॥ श्रीः ॥

योगदर्शनम् ।

श्रीमहर्षिपतञ्जलिप्रणीतम् ।

वाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि
श्रीमत्प्यारेलालात्मजश्रीमत्प्रभुदयालुनिर्मित,

देशभाषाकृतभाष्यसमेतम् ।

तदेतत्

श्रीकृष्णदासात्मजक्षेमराजश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् यंत्रालये

मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ।

प्र. चैत्र संवत् १९६४, शके १८२९,

भूमिका.

सत्य ज्ञानरूप परमात्माको प्रणाम करनेके अनन्तर जो मनुष्य संस्कृत नहीं जानते व शास्त्र पठनमें समर्थ नहीं हैं उनके विद्यालाभ और यह विदित होनेके लिये कि किसी समयमें इस आर्य्यावर्त देशमें कैसे कैसे विद्वान् सज्जन महात्मा थे और अब यह आर्य्यावर्त कैसी दशामें प्राप्त है उन विद्वानोंके ग्रंथोंको देखकर पूर्व कालमें इस देशमें विद्या व धर्मवान् पुरुषोंकी अधिकता जानकर अब सत् पुरुषोंको उचित है कि सत्संग व विद्यामें रुचिको बढाकर सत्संग व विद्याके गुण व फलका उपदेशकर फिर इस देशका धर्म व विद्याकी बुद्धिसे सुशोभित करें पूर्व कालमें महर्षि पतंजलिऋषिने विषयक योगदर्शनको सूत्रोंमें ऐसी अत्युत्तम रीतिसे वर्णन किया है कि जिसके ज्ञान व योग साधनसे श्रद्धालु व साधनको परम सुख मोक्ष प्राप्त होनेके योग्य है व सम्पूर्ण दुःख व बंध छूट जाता है उस उत्तम शास्त्रके सूत्रोंके भाष्यको यथामति सरल देश भाषामें वर्णन करता हूँ इस ग्रंथमें प्रथम मूल सूत्र संस्कृतमें और अर्थ भाषामें वर्णन किया जायगा यह ग्रंथज्ञाता धर्मवान् श्रद्धालु गुणग्राहकोंको अति प्रिय व उत्तम विदित होगा अधर्मवान् अश्रद्धालु विषयी मनुष्योंको चाहै प्रिय न हो. इससे प्रार्थना है कि विद्वान् श्रद्धालु सज्जन अवश्य इस ग्रंथको ग्रहण करें व जो कहीं भूल हो जावे तो सज्जन महात्मा कृपा करके शुद्ध करलेवें. और इसका " कापीराइट " श्रीवेंकटेश्वरयंत्रालयाध्यक्ष "खेमराज श्रीकृष्णदास" के समर्पण किया गया है. अतएव और कोई महाशय इसके छापनेका इरादा न करें.

सज्जनोंका कृपापात्र—

प्रभुदयाल.

T

ॐ परमात्मने नमः ।

महर्षिपतञ्जलिप्रणीत–

योगदर्शन.

भाषाटीकासहित ।

अथ योगानुशासनम् ॥ १ ॥

अथ योग शिक्षा वा उपदेशको आरंभ करते हैं ॥ १ ॥

योगकी शिक्षा वा योगके उपदेशको आरंभ करते हैं यह सूत्रका अर्थ है सो आरंभ करते हैं यह सूत्रमें शेष है भावसे क्रियाका आक्षेप किया जाता है महात्मा पतंजलिजीने अथ शब्दसे शास्त्रका आरंभ कियाहै अथ शब्द मंगलवाचक है इससे प्रथम सूत्रके आदिमें शास्त्रके आरंभमें रक्खाहै योग अनुशासनमें प्रथम अधिकारी, विषय, सम्बन्ध, व फल, ये अनुबंध चतुष्टय जानने उचित हैं आत्माके जाननेकी इच्छा करनेवालेको जिज्ञासु कहते हैं जो जिज्ञासु है वही इस शास्त्रके विषयका अधिकारी है, योग इसका विषयहै, योग धारणमें अधिकारीके चित्तकी जो प्रवृत्तिहै वह सम्बंध है, मोक्ष फलहै, अब शास्त्रके विषयका लक्षण वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ॥ २ ॥

चित्तकी वृत्तियोंका निरोध योगहै ॥ २ ॥

चित्तवृत्तियोंका निरोध (रोकना रूप योग दो प्रकारका है; संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात. चित्तकी वृत्तियोंके प्रवृत्त होने व निरोध होनेके अवस्था भेदसे चित्तकी पांच भूमि अर्थात् पंचस्थान हैं; क्षिप्त, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र व निरुद्ध

जब चित्त रजोगुणसे अति चंचल होताहै वह क्षिप्त व जब चित्तमें तमोगुणसे निद्रा व मूढता होतीहै वह मूढ, व जो अत्यंत चलायमान चित्तहै व किसी समय में स्थिर भी हो जाताहै वह विक्षिप्त कहा जाताहै, क्षिप्त व मूढ अवस्थामें योगकी गंध भी नहीं होती विक्षिप्तमें कहीं कहीं योग होताहै, एकाग्रमें अर्थात् सत्त्वगुण प्रधान जो एक विषयमें स्थित चित्तहै उसमें रजोगुण तमोगुण वृत्तियोंके निरोध व सात्त्विक वृत्ति विशेषरूप संप्रज्ञात योग होता है, वेदस्मृतिके प्रमाणसे संप्रज्ञात योगमें ज्ञाताको जो परोक्ष (अदृष्ट) अर्थ है वह साक्षात् होता है साक्षात् होनेसे क्लेशका नाश होता है आविद्या आदि क्लेश—जिनका वर्णन आगे किया जायगा—नाश होनेसे कर्मका नाश होता है तव सात्त्विक वृत्तियेंभी निरोध होनेसे व संस्कारमात्र शेष रहनेसे सम्पूर्ण चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है अर्थात् सव चित्तकी वृत्तियां रुक जाती हैं निरोध शब्दका अर्थ रुकजाना है निरुद्ध चित्तमें असंप्रज्ञात योग होताहै, दोनों प्रकारके योगका साधारण लक्षण सूत्रमें यह कहा है कि चित्तकी वृत्तियोंका निरोध योग है (शंका) एक चित्तकी अनेक भूमि किस हेतुसे कही हैं ? (उत्तर) चित्तके त्रिगुणात्मक होनेसे चित्त ज्ञान सुख आदि शीलता वृत्ति गुण आदि मत्ता आलस्य दैन्य आदि मत्तासे सत्त्व, रज, तम, गुणक होताहै सत्त्वगुण कुछ कम व रज तम जव वरावर होते हैं तव सत्त्वगुणसे चित्त ध्यानमें प्रवृत्त हुआ जो तमोगुणसे ध्यानको छोडकर रजोगुणसे अनेक कामना करते विषय प्रिय होता है वह विक्षिप्त है जव तमोगुण प्रधान मूढ होता है तव अकल्याण अधर्म अज्ञान अवैराग्य अनैश्वर्य्यको प्राप्त होता है अज्ञान शब्दसे भ्रम निद्रा अर्थकाभी ग्रहण यहां मूढ होनेके लक्षणमें जानना चाहिये रजोगुण प्रधान क्षिप्त होता है इस प्रकारके तीन गुण होनेके कारणसे त्रिगुणात्मक चित्त क्षिप्त मूढ सवके साधारण होते हैं विक्षिप्त प्रथम योगियोंका चित्त होता है योगी चार प्रकारके होते हैं प्रथम कल्पिक मधुभूमिक प्रज्ञाज्योति अतिक्रांति भावनीय तिनके लक्षण यहहैं प्रथम सत्त्वगुण प्रधान रजोगुण तमोगुण युक्त होता है द्वितीय एकाग्र संप्रज्ञात योगसे उत्पन्न सिद्धिसे योगीका

चित्त धर्मज्ञान वैराग्य ऐश्वर्यको प्राप्त होताहै तृतीय जब रजोगुण तमोगुण मलसे स्वच्छ शुद्ध सत्त्व चित्त होताहै तब विवेकख्याति द्वारा पुरुषमात्र-का ध्यान पुरुष धर्मबुद्धिसे करता है जब ध्यान करनेवाला ध्यानमें दृढ होकर अनेक प्रकारके विषय देखनेपर भी अशुद्ध नाशमान निश्चय करिके सत्त्वगुण विचारयुक्त विवेकख्यातिमेंसे भी चित्त शक्तिको रोकता वा निरोध करता है, संस्कारमात्र रहजाता है वह चतुर्थ अतिक्रांति भावनीय योगीकी अवस्था है सोई असंप्रज्ञात योग वा समाधि है इसमें केवल शुद्ध चेतनरूपमें मग्न होकर अन्य विषयोंको नहीं जानता सम्पूर्ण विषय सुख दुःख मोह शून्य होताहै जो यह शंकाहो कि बुद्धि वृत्तिपुरुषका स्वभाव है वृत्ति निरोध होनेसे स्वभाव भिन्न कैसे पुरुषकी स्थिति होसक्ती है ? इसका समाधान अब सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २ ॥

तदा द्रष्टुस्स्वरूपेवस्थानम् ॥ ३ ॥

तब द्रष्टाका स्वरूपमें ही स्थान है ॥ ३ ॥

अभिप्राय यह है कि, जब चित्तके शांत घोर मूढ सब वृत्तियोंका निरोध होजाता है तब द्रष्टा जो देखनेवाला चिदात्मा है उसकी स्वाभाविक रूपमें स्थिति होती है बुद्धिवृत्तियां पुरुषका स्वभाव नहीं हैं किस प्रकारसे सब वृत्तियोंके निरोध होनेमें पुरुषका शुद्ध स्वाभाविकरूप प्राप्त होता है जैसे जपाकुसुम (गोडहरका फूल) के दूर होजानेपर स्फटिकका शुद्ध रूप होजाता है अथवा सब वृत्तियोंके निरोध होजानेपर द्रष्टा जो साक्षी ज्ञान-स्वरूप सर्वज्ञ परमेश्वर है उसके स्वरूप मात्रमें समाधिमें योगीकी स्थिति होती है ॥ ३ ॥

वृत्तिसारूप्यमितरत्र ॥ ४ ॥

वृत्तिसारूप्य इतरमें ॥ ४ ॥

इतरमें (अन्यमें) अर्थात् निरोधसे भिन्न जो व्युत्थान (वृत्तियोंके न रुकनेकी अवस्था) आदि वृत्तियां हैं उनहीके रूपभावमें पुरुष अपनेको

मानता है कि शांतहूं मूढहूं दुःखीहूं व्युत्थान अवस्थामें ऐसा मानना केवल भ्रम है इससे स्वभावसे आत्मा पतित नहीं होता जैसा जपा कुसुमके समीप होनेके समयमें स्फटिकमें अरुणता (ललाई) दीख पडती है । परंतु उसकी स्वाभाविक शुक्लता दूर नहीं होजाती निरोधमें मुक्ति व्युत्थानमें बंध है यह पूर्व व पर दोनों सूत्रोंका आशय है. अब निरोध करनेके योग्य वृत्तियां कै प्रकारकी हैं यह वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टा अक्लिष्टाः ॥ ५ ॥

वृत्तियाँ क्लिष्ट अक्लिष्ट रूप पांच प्रकारकी हैं ॥ ५ ॥

जो वृत्तियां राग द्वेष आदि क्लेशके कारण होकर बंधफल करनेवाली होतीहैं अर्थात् सब जीवोंको प्रमाण आदिक वृत्तियोंसे जाने हुए अर्थोंमें राग द्वेष मोह द्वारा कर्म कराके सुख दुःखमें बांधती हैं वह क्लिष्ट है और जो मोक्षफल देनेवाली हैं वह वृत्तियां अक्लिष्ट कही जाती हैं अक्लिष्ट वृत्तियां वैराग्य अभ्याससे क्लिष्ट वृत्तियोंके प्रवाहमें बहे जाते प्राणियोंको अपनेसे उत्पन्न अक्लिष्ट संस्कारोंको वारंवार अभ्यास से बढाकर क्लिष्ट संस्कारको रोकती हैं क्लिष्ट वृत्ति प्रवाहका निरोध (रोक) करके पर वैराग्यसे आप भी निरुद्ध होजाती हैं अर्थात् शांत होजातीहैं तब संस्कार मात्र रहेहुए चित्तकी मुक्ति होती है ॥ ५ ॥

प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ॥ ६ ॥

प्रमाण विपर्यय विकल्प निद्रा स्मृति यह वृत्तियाँ हैं ॥ ६ ॥

अर्थात् यह पांच वृत्तियाँ हैं ॥ ६ ॥

तत्र प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ॥ ७ ॥

प्रत्यक्ष अनुमान आगम ये प्रमाणहैं ॥ ७ ॥

जिसवृत्तिसे प्रमाण (निश्चयात्मक बोध) की प्राप्ति होतीहै अर्थात् जिससे यह वस्तु यथार्थ इस प्रकारसे है यह ज्ञान होताहै उसकी प्रमाण संज्ञाहै

T

उस प्रमाणके तीन भेद हैं प्रथम प्रत्यक्ष, इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्ष (व्यवधान रहित संयोग) से उत्पन्न व व्यभिचार दोष रहित ज्ञानकी धारण करनेवाली चित्तकी वृत्ति 'प्रत्यक्ष' प्रमाणहै। प्रत्यक्षद्वारा अप्रत्यक्षका जिसका प्रत्यक्षके साथ सम्बंधसे जानना अनुमान वृत्तिहै यथा—धूम देखकर प्रत्यक्ष धूम द्वारा अप्रत्यक्ष अग्निकी व्याप्ति सम्बंधसे जानना कि जहां अग्नि होती है वहीं ऐसा धूम जैसा प्रत्यक्ष होरहाहै होताहै यथार्थ अनुमान यथार्थ व्याप्तिके ज्ञानसे होता है साध्य साधनका किसी धर्म विशेषके साथ सम्बन्ध रहना व्याप्ति है ऐसे सम्बन्ध होनेके ज्ञानको व्याप्ति ज्ञान कहते हैं यथा—धूम व अग्निके सम्बंध होनेके ज्ञानसे विशेष रूपसे धूमको देखकर यह निश्चय करना कि जहां ऐसा धूम होता है बिना अग्निके नहीं होता इस व्याप्ति ज्ञानसे धूमके प्रत्यक्ष होनेसे अप्रत्यक्ष अग्निका जानना अनुमान है जो यह संशय हो कि दूरसे पर्वत धूलि कुहिर धूम सदृश दीख पडते हैं उनमें अग्निका अनुमान होना चाहिये तौ इसका उत्तर यह है कि ऐसा नहीं होसक्ताहै क्योंकि अनुमानका मूल प्रत्यक्ष है पूर्व प्रत्यक्ष द्वारा अनुमान होताहै प्रत्यक्ष जो विकार दोषसंयुक्त हुआ तौ अनुमान भी मिथ्या हो जाताहै इसीसे प्रत्यक्षके लक्षणमें कहाहै कि इन्द्रिय व अर्थके सन्निकर्षसे उत्पन्न दोष भ्रमरहित ज्ञान प्रत्यक्षहै जो दूर होनेके हेतुसे अथवा इन्द्रियमें विकार दोष होने आदि अन्यकारणसे भ्रामिक ज्ञान होताहै वह प्रत्यक्ष नहीं है इससे उक्तलक्षणमें दोषापत्ति नहीं है असत् प्रत्यक्षसे व्याप्ति स्थापन मिथ्याहै व तन्मूलक अर्थात् उसके द्वारा जो अनुमान होताहै वह भी मिथ्याहै वा होताहै आप्तनाम भ्रमरहित साक्षात् पदार्थका ज्ञाता सत्यवादी जो अपने दृष्ट वा अनुमित अर्थका उपदेश करै उस अर्थको आप्तके कहेहुए शब्दोंसे जानना व उसको प्रमाण मानना 'आगम' प्रमाण है यथा आप्त ईश्वर प्रणीत मानकर वेद आगम प्रमाण मानाजाताहै ॥ ७ ॥

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठितम् ॥ ८ ॥

मिथ्याज्ञान जो पदार्थ स्वरूपसे प्रतिष्ठित विरुद्ध अर्थात् बुद्धिमें स्थित हो वह विपर्यय है ॥ ८ ॥

जो यह तर्क कियाजाय कि यथा विपर्यय अनेक विषयमें प्रतिष्ठा शून्य है तथा विकल्प भी है इस संदेह अतिव्याप्ति (लक्ष्यसे भिन्न वस्तुमें लक्षणकी प्राप्ति) के निवृत्ति होनेके अर्थ मिथ्याशब्द सूत्रमें कहाहै तात्पर्य यह है कि, जब पदार्थके होनेमें असत्यता नहीं परन्तु उसके ज्ञानमें दोष है अर्थात् जैसा सत्यरूप पदार्थ है वैसा ज्ञान न होकर उसके विरुद्ध होता है यथा—आत्मा नित्य चेतनरूप है उसको भ्रमसे अनित्य जड मानना रस्सीको अंधकारमें सर्प जानना आत्मा व रस्सीका होना असत्य नहीं है ज्ञान होनेमें मिथ्यात्व है अनित्य होना व सर्पका होना यह मिथ्याज्ञान विपर्य्यय है विकल्पमें जिस पदार्थका भ्रमसे स्वीकार [अंगीकार] होताहै वह पदार्थही मिथ्या होता है न केवल ज्ञान जैसा आगे सूत्रमें लिखाहै ॥ ८ ॥

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ॥ ९ ॥

शब्दज्ञान अनुसार वस्तु शून्यका विकल्प ॥ ९ ॥

मनुष्यके सींग सुनकर मानलेना विकल्प है यद्यपि मनुष्य सत्य है सींग सत्य है परन्तु मनुष्यका सींग सत्य नहीं है ऐसा जानकर भी किसीके कथनसे वा लेखसे प्रमाण विरुद्ध मानना विकल्प है तथा चेतनरूप पुरुष है यह जानकर विनाप्रमाण परीक्षा पुरुषमें चैतन्य भेद मानना विकल्प है इत्यादि ॥ ९ ॥

अभावप्रत्ययावलंबना वृत्तिर्निद्रा ॥ १० ॥

अभावहेतुको अवलंबन विषय है जिस वृत्तिका वह निद्रा है ॥ १० ॥

अभावमें जो हेतु है वह अभावहेतु है जाग्रत् स्वप्न वृत्तियोंके अभावका हेतु तमोगुण होता है इससे अभावप्रत्यय वा अभावहेतुसे अभिप्राय तमोगुणसे है क्योंकि प्रथम तमोगुणके आधिक्यसे पुरुष जब स्वप्नको प्राप्त होता है तब जाग्रतकी वृत्तियोंका अभाव होता है उससेभी अधिक तमोगुण आश्रित हो स्वप्नवृत्तिके अभाव होनेपर सुषुप्ति अवस्थाको प्राप्त होता

है ऐसे अभाव हेतु तमोगुणको अवलंबन करनेवाली वृत्ति निद्रा है. अब शंका यह है कि वृत्तिविषय सम्बंधमें विपर्यय आदिकका अनुकथन होते आया है सम्बंधहीसे जैसे विपर्यय आदिमें विनावृत्ति शब्दके वृत्तिके कह-नेका बोध होता है निद्राकी वृत्ति होनेका ज्ञान साधरण था वृत्ति शब्द रखनेका क्या प्रयोजन था ज्ञानका अभाव निद्रा है यह कहना यथार्थ था इसका उत्तर यह है कि, ज्ञानका अभाव निद्रा माननेमें दोषकी प्राप्ति है इससे चित्तके अभाववृत्तिमात्र जनाने व ज्ञान अभाव माननेवालोंके मत खण्डन करनेके अर्थ वृत्ति पद रक्खा है. तात्पर्य यहहै कि, ज्ञानके अभावका हेतु अज्ञान अवलंबन विषय निद्रा नहीं है केवल चित्तवृत्तिके अभावके हेतु तमोगुणको अवलंबन वा धारण करनेवाली निद्रा है क्योंकि जो ज्ञानके अभावको निद्रा मानें तो सत्त्वगुण वृत्तिको स्वप्नमें प्राप्तहो उठकर बहुत सुखसे मैं सोया अथवा रजतम वृत्तिसे कुस्वप्नको प्राप्त सोनेसे उठकर बहुत दुःख सोनेमें रहा अथवा अत्यंत तमके आधिक्यसे घोर निद्रासे उठकर यह कहना कि ऐसा सोया कि कुछ स्मरण नहीं रहा ऐसा ज्ञान न होना चाहिये क्योंकि यह बुद्धि वा ज्ञानका धर्म है ॥ १० ॥

अनुभूतविषयाऽसंप्रमोषः स्मृतिः ॥ ११ ॥

अनुभूत विषयमें जो अस्तेय है वह स्मृतिहै ॥ ११ ॥

जो पूर्वमें अर्थात् भूतकालमें होगया है वह ज्ञानमें प्राप्तहुवा है उस चित्तवृत्तिस्थ बोध संस्कारसे उत्पन्न अनुभव अर्थात् पूर्वसे जो ज्ञानविषय चित्तमें प्राप्त है उसके फिर उदयकरनेवाली वृत्तिको स्मृति कहते हैं, असंप्रमोष पद रखनेका क्या प्रयोजन था ? अनुभूत विषयका ग्रहण स्मृति है यही कहनेसे प्रयोजन सिद्ध होता है उत्तर यह है कि, संप्रमोष नाम-स्तेय अर्थात् हरविषय वा पदार्थको अपना ऐसा ग्रहण करनेको कहते हैं जैसे कोई अनुभूत विषयको जो अपने स्मरणमें नहीं है उसको यथा पुत्रके स्मृति मूल अनुभव विषयको पिताका व किसी अन्यके स्मृति विषयका अन्यका अपना ऐसा निश्चय करलेना संप्रमोषहै संप्रमोष जिसमें न हो वह असंप्रमोषहै

अभिप्राय यह है कि, अपने चित्तमें प्राप्त बोधके संस्कारसे जो अनुभव विषयकी वृत्तिहै वह स्मृतिहै पर स्मृतिसे अंगीकार करलेना स्मृति नहींहै असंप्रमोष पदके न रखनेसे परस्मृति मूलक अनुभव विषयके ग्रहणका भी संभ्रम रहता है इससे असंप्रमोष पद रक्खा है जो यह शंका हो कि जो अनुभूत नहीं है वह भी स्वप्नमें यथा अपने शरीरमें हाथीके शरीरका स्मरण व बोध होता है यह भी स्मृति है तो यह जानना चाहिये कि यह स्मृति नहीं है यह विपर्यय है जिसका लक्षण पूर्वही वर्णन कियागयाहै ॥ ११ ॥

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ॥ १२ ॥

अभ्यास व वैराग्यसे तिन वृत्तियोंका निरोध होताहै ॥ १२ ॥

इन सब वृत्तियोंका कि जिनका ऊपर वर्णन हुवा है अभ्यास व वैराग्यसे निरोध होता है ॥ १२ ॥

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः ॥ १३ ॥

तिसमें स्थितिमें यत्न करना अभ्यास है ॥ १३ ॥

तिसमें वृत्तियोंके निरोधमें अर्थात् वृत्तियोंके निरोधके उपायमें रजोगुण तमोगुण शून्य चित्तकी एकाग्रतामें स्थिति होना अर्थात् ठहरना तिस स्थितिमें साधन यम नियम आदिमें प्रयत्न करना अभ्यास है. जो यह संशय हो कि अनिश्चितकालसे प्रबल राजस तामस वृत्ति विरुद्ध संस्कार करके कुंठित अभ्याससे स्थिति नहीं होसक्ती इसके समाधानके अर्थ आगे सूत्रमें दृढ होनेका उपाय जिससे स्थिति हो वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

स तु दीर्घकालनैरंतर्य्यसत्कारसेवितो दृढभूमिः ॥ १४ ॥

सो तो दीर्घकालतक निरंतर सत्कारसे सेवित दृढभूमि होताहै ॥ १४ ॥

इस शंका निवारणके अर्थ कि राजस तामस वृत्ति व्युत्थान संस्कारसे अभ्यास कैसे होसक्ता है ? सूत्रमें तु शब्द कहा है कि नहीं अभ्यास तो दृढ होताहै किस प्रकारसे दृढ होता है ? दीर्घ कालतक निनंतर तप ब्रह्मचर्य विद्या श्रद्धारूप सत्कारसे सेवित होनेसे दृढ होकर स्थितिके योग्य होता है व्युत्थान संस्कार फिर उसको बाधा नहीं करते सत्कार तप ब्रह्मचर्य विद्या श्रद्धाको कहते हैं इसमें यह श्रुति प्रमाण है सत्कार विषयमें कहाहै "अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्येति" अर्थ उत्त-रोक्त तप करके ब्रह्मचर्य करके श्रद्धा करके विद्या करके अर्थात् तप ब्रह्मचर्य श्रद्धा व विद्याद्वारा आत्माको खोजकर ॥ १४ ॥

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकार-संज्ञा वैराग्यम् ॥ १५ ॥

दृष्ट व आनुश्रविक विषयके तृष्णा रहितको वशीकार-संज्ञा वैराग्य होताहै ॥ १५ ॥

चार प्रकारका वैराग्य क्रमसे होताहै. यतमान व्यतिरेक एकेन्द्रिय वशीकार संज्ञा अर्थात् चार प्रकारसे वैराग्य चित्तमें प्राप्त होता है प्रथम जिस जिस भोगकी चित्तमें प्रीति है उनमें इन्द्रियप्रवृत्त करनेवालेका जो भोगसे संतोष धारण करके त्याग करनेका यत्न करना है उसको यतमान वैराग्य कहते हैं फिर कुछसे संतुष्ट होकर त्याग करनेको व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य कहते हैं फिर सब संसारी भोगमें इन्द्रिय प्रवृत्त करनेसे मनसे उदासीन हो त्यागनेको एकेन्द्रिय वैराग्य कहते हैं इसके पश्चात् जहांतक स्त्री अन्नपान आदि सुख जो देखे जाते हैं व गुरुवाक्यसे सुने व वेदमें वर्णित स्वर्ग आदि दिव्य व अदिव्य सुख विषयमें नाश परिताप ईर्ष्या दोषोंको अभ्याससे साक्षात् करके उनमें उदासीनता धारण करके मनको वशकर तृष्णा त्याग करनेको वशीकारसंज्ञा वैराग्य कहतेहैं ॥ १५ ॥

अपर वैराग्यको कहकर अब पर वैराग्यको वर्णन करतेहैं ॥

तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ॥ १६ ॥

पुरुषख्यातिसे उससे पर अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्यसे अधिक गुण वैतृष्ण्य नामक पर वैराग्य होताहै ॥ १६ ॥

सूत्रका अभिप्राय यह है कि, जिन योगके अंगोंका आगे वर्णन किया जायगा उन योगके अंगोंके अनुष्ठानसे अतिशुद्धतारहित चित्तके विषयोंमें दोष देखनेसे वशीकारसंज्ञक (नामक) वैराग्यके होनेमें गुरु व शास्त्रसे उपदेश कीगई जो पुरुषख्याति धर्ममेध[1] नामक है उसके अभ्यास ध्यान रूपसे रजोगुण तमोगुण मलरहित चित्त सत्त्वगुणमात्र शेष अति प्रसन्न होता है यह अतिशुद्धचित्त होनेका धर्म है प्रसन्नता धर्ममेध पुरुषकी उत्तर मर्य्यादा है उसके फल वशीकार संज्ञासे पर (उत्कृष्ट) जो रजोगुण तमोगुण सत्त्वगुणोंके विषयोंकी तृष्णासे रहित होता है उसको गुण-वैतृष्ण संज्ञक परवैराग्य कहते हैं इसीको मोक्षका हेतु व इसके उदय होनेसे सम्पूर्ण क्लेश व कर्माशयसे रहित पुरुष कृतार्थ होता है यह योगीजन कहते हैं इससे यह अभिप्राय नहीं है कि अपने ज्ञान आनन्द स्वाभाविक गुणसे वैराग्य होना कहा है किन्तु रजोगुण तमोगुण दूर होनेके पश्चात् सत्त्वगुण रहजाता है उससे जो उत्पन्न प्रसन्नता है उससे भी वैराग्यहोनेसे (त्रिगुण मात्र सबसे वैराग्य होनेसे) व केवल आत्मानन्द वा ब्रह्मानन्दमें मग्न होनेसे तात्पर्य्य है; क्योंकि त्रिगुण विषयजन्य सुख सब नाशवान अनित्य है इससे उनमें विराग होना ही उचित है अब वैराग्य अभ्याससे साध्य संप्रज्ञात व असंप्रज्ञात योगको क्रमसे वर्णन करते हैं ॥ १६ ॥

१-पुरुषधर्मका ज्ञान जिसमें हो उसकी धर्ममेघ संज्ञा है संस्कृतम इसका अर्थ इस प्रकारसे जानना चाहिये " कैवल्यफलरूपमशुक्लमकृष्णं धर्मविशेषं मेहतीति सिंचतीति धर्ममेघः । "

T

वितर्कविचारानन्दास्मितारूपानुगमा-त्संप्रज्ञातः ॥ १७ ॥

वितर्क विचार आनन्द अस्मितारूप अनुगमसे संप्रज्ञात योग होता है ॥ १७ ॥

वितर्क विचार आनन्द अस्मितारूप प्राप्त भेदसे चार प्रकारका संप्रज्ञात योग होता है जैसे निशाना लगानेवाला प्रथम बडे निशानेमें बान चलानेका अभ्यास करता है पश्चात् उससे छोटेमें इस प्रकारसे जहाँतक सूक्ष्ममें उसको अभीष्ट है वहाँतक क्रमसे अभ्यास करता है इसी प्रकारसे योगी प्रथम अतिसूक्ष्ममें चित्तस्थिर करनेको समर्थ न होकर स्थूलका ध्यान करके साक्षात् करता है जैसे सूर्य्य आदि किसी साकारपदार्थका ध्यान करके साक्षात् करना इसको वितर्कयोग कहते हैं इसी वितर्कमें स्थूलके ध्यानके अभिप्रायसे बहुत आचार्य्य राम कृष्ण विष्णु आदिके रूपके ध्यानको ग्रहण करते हैं यह ध्यान योगीको मुख्य अभीष्ट नहीं है परंतु जैसे प्रथम घट वा अन्य कोई बडे पदार्थमें निशाना लगाना सीखनेके अर्थ उपयोगी (सहायक) है इसी प्रकारके स्थूल ध्यान अभीष्टध्यानका उपयोगी है इसके पश्चात् अर्थात् स्थूलके साक्षात् करनेके पश्चात् स्थूलके कारणरूप सूक्ष्म पांच मात्रा रूप रस गंध स्पर्श शब्द इनको ध्यान करके साक्षात् करनेको विचार योग कहते हैं यथा सूर्य्यके आकारको छोडकर तेजमात्र रूपका ध्यान करना इत्यादि प्रथम जो वितर्कहै वह स्थूल सूक्ष्म इन्द्रिय अस्मिता चतुर्विषयकहै अर्थात् चार विषयरूप है व विचार तीन सूक्ष्म इन्द्रिय अस्मिता विषयक है तिस पीछे स्थूल इन्द्रियोंका जो ज्ञानके प्रकाशके हेतु होनेसे सत्त्वरूप है ध्यान करके साक्षात् करना आनन्दयोग है. यह इन्द्रिय अस्मिता द्विविषयक है इन्द्रियोंके साक्षात् करनेके पश्चात् इन्द्रियोंकी कारणबुद्धि जो ग्रहण करनेवाले पुरुषके साथ एकभावको प्राप्त है वह अस्मिता है ध्यानसे उसके साक्षात् करनेको अस्मिता योग कहते हैं. इस प्रकारसे सवितर्क

T

सविचार सानन्द व सास्मिता ये चार भेद संप्रज्ञात योगकेहैं भोग विषय
इन्द्रिय सवितर्क त्रिगुणात्मक चित्त सविचार अहंकार सानन्द महत्तत्त्व
सास्मिता कहे गये हैं मैं हूं ऐसा विषयग्राहक अंतःकरण अहङ्कार है सत्ता-
मात्र महत्तत्त्वमें लीन सत्तामात्र अवभासक अस्मिता है यह दोनोंका भेद है
इनका धारण करनेवाला पुरुष है ॥ १७ ॥

विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः॥१८॥

विराम प्रत्ययका अभ्यास है पूर्वमें जिसके ऐसा संस्कार शेष अन्य अर्थात् असंप्रज्ञात योग है ॥ १८ ॥

विराम जो वृत्तियोंका अभाव है उसका प्रत्यय (कारण) वैराग्य है
इससे विराम प्रत्यय वैराग्य की संज्ञा है. वैराग्यका अभ्यास है पूर्वउपायमें
जिसके ऐसा संस्कार शेष जो असंप्रज्ञातयोग है जिसमें पर वैराग्य संप्रज्ञा-
तके संस्कारोंको भी मिटा करके अपने संस्कारोंको बाकी रखता है वही
निर्बीज समाधि है क्योंकि यह परवैराग्य संस्कारमात्र शेष (बाकी) जो
असंप्रज्ञात है इसमें सब कर्मबीजका नाश हो जाता है यह असंप्रज्ञात योग
दो प्रकारका होता है; भवप्रत्यय व उपायप्रत्यय जैसा आगे सूत्रमें
वर्णन करते हैं ॥ १८ ॥

भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ॥ १९ ॥

विदेहप्रकृतिलयोंको भवप्रत्यय होता है ॥ १९ ॥

जो योगी विदेह देहसे रहित असंप्रज्ञात योगको प्राप्त प्रकृतिमें चित्तको
लीन करते हैं अर्थात् प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार पंचतन्मात्राओंमें प्रकृति
ही के आत्मा होनेकी भावना करके लीन हुए हैं उन विदेहप्रकृतिलयोंको
भवप्रत्यय असंप्रज्ञात योग होता है अविद्यामें सम्पूर्ण जीव भव (उत्पन्न)
होते हैं इससे अविद्याका नाम भवहै भव (अविद्या) है प्रत्यय[हेतु]जिसका वह
भवप्रत्यय असंप्रज्ञात है इसमें चित्त लीन होनेमें भी संस्कार शेषरहताहै
चित्त संस्कार होनेसे फिर चित्त संस्कारके उठनेमें सोए हुए चित्तके तुल्य

संसारमें पतित होता है यह मुमुक्षुओंको त्याग करनेके योग्य है. अब जो ग्रहणके योग्य है वह वर्णन करते हैं ॥ १९ ॥

श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ॥२०॥

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरोंको अर्थात् मुमुक्षुओंको ॥ २० ॥

प्रथम सात्त्विकी श्रद्धा होती है श्रद्धासे वीर्य अर्थात् प्रयत्न होताहै प्रयत्नसे यम नियम आदि एक एकके पर साधन करते स्मृति होती है अर्थात् ध्यान होता है स्मृति शब्द यहाँ ध्यानवाचक है ध्यानसे समाधि होताहै तिससे प्रज्ञाके अभ्याससे संप्रज्ञात योग होताहै तिससे पर वैराग्यसे मुमुक्षुओंको असंप्रज्ञात योग होता है इसप्रकार श्रद्धासे लेकर प्रज्ञापर्यंत जे उपाय हैं तिनपूर्वक उपाय प्रत्यय होता है यह उपाय प्राणियोंको पूर्वसंस्कार बलसे मृदु मध्य अधिमात्र तीन प्रकारसे होता है इसी प्रकारसे योगी तीन प्रकारके होते हैं. मृदु उपाय मध्य उपाय अधिमात्र उपाय तीनमें मृदु उपायः त्रिविध होता है मृदुसंवेग मध्यसंवेग तीव्रसंवेग इसी प्रकारसे मध्य उपाय अधिमात्र उपायमें भी जानना चाहिये इस प्रकारसे नव प्रकारके योगी होते हैं तिनको चिर व चिरतर व क्षिप्र क्षिप्रतर सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं अर्थात् बहुत काल व और भी बहुत वा अधिक काल व जल्द व बहुत ही जल्द पूर्व संस्कारके अनुसार सिद्धियां प्राप्त होती हैं उपाय करनेवालोंमें किसी किसीको शीघ्र [जल्दी] सिद्धियां प्राप्त होती हैं जैसा आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २० ॥

तीव्रसंवेगानामासन्नः ॥ २१ ॥

तीव्रसंयोग योगियोंको समाधि ॥ २१ ॥

जिन योगियोंका संवेग [वैराग्य] उत्कृष्ट है उपाय अभ्यास अधिमात्र है अर्थात् अधिक है उनको जल्द असंप्रज्ञात समाधिकी प्राप्ति होती है व उससे मोक्ष लाभ होता है ॥ २१ ॥

T

मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोपि विशेषः ॥२२॥

मृदुमध्य अधिमात्र होनेसे उससेभी विशेष है ॥२२॥

तीव्र संवेगके भी मृदु मध्य अधिमात्र होनेसे उससे मृदु तीव्र संवेग योगीके समाधिसे मध्य तीव्र संवेगको अधिक जल्द समाधि लाभ व अधिमात्र तीव्र संवेगको अत्यंत दृढ व बहुत ही जल्द समाधिलाभ होता है यह विशेषता है तिससे तीव्रसंवेग समाधिसे अर्थात् मृदु तीव्र संवेग समाधिसे भी मध्यतीव्र संवेग आदि विशेष हैं ॥ २२ ॥

ईश्वरप्रणिधानाद्वा ॥ २३ ॥

अथवा ईश्वर प्रणिधानसे ॥ २३ ॥

कायिक वाचिक मानसिक ईश्वर प्रणिधानसे अर्थात् भक्तिविशेषसे ईश्वरमें चित्त लगानेसे बहुत जल्द दृढ समाधि होतां है अथवा जो कहा है. यह प्रथम जो उपाय कहा है उससे भिन्न यह दूसरा उपाय जनानेके अर्थ है ॥ २३ ॥

जिस ईश्वरके प्रणिधानसे समाधिलाभ होता है उसका लक्षण क्या है? इस विज्ञापन जनानेके अर्थ आगे सूत्रमें ईश्वरका लक्षण वर्णन करते हैं ॥

क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष-विशेष ईश्वरः ॥ २४ ॥

क्लेश कर्म विपाक आशयोंसे रहित पुरुषविशेष ईश्वरहै २४

अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश यह पांच क्लेश व कर्म धर्म अधर्म तिनके फल फलानुकूल संस्कार आशय जे मनमें रहतेहैं उनके सम्बन्धसे रहित पुरुष विशेष ईश्वर है विशेषपदसे यह प्रयोजन है. कि, जैसे अन्यकर्म-विपाक आशय सहित सांसारिक पुरुष हैं व क्लेश आदि भोग करते हैं ऐसा ईश्वर नहीं है तीनों कालमें ईश्वर क्लेश आदि सम्बन्धसे रहित है इससे अन्यपुरुषोंसे विशेष है मुक्तजीवोंसे भी विशेष है क्योंकि मुक्तजीव भी पूर्व-

T

कालमें त्रिगुण बंधमें थे विवेकद्वारा मुक्तहुए हैं ईश्वर अनादि शुद्धसत्त्वात्मक त्रिकालमें अविवेक बन्धन रहित है पुरुष विशेष कहनेसे त्रिकाल निर्बंध ज्ञानमय ईश्वरके होनेसे अभिप्राय है ॥ २४ ॥

तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ॥ २५ ॥

तिसमें निरतिशय ज्ञान सर्वज्ञ होनेका बीजहै ॥ २५ ॥

जिससे अधिक अन्य न हो उसको निरतिशय कहतेहैं तिसमें(ईश्वर में) जो निरतिशय ज्ञानहै वह ईश्वरके सर्वज्ञ होनेका बीज है अर्थात् सर्वज्ञ होनेका ज्ञापक (जनानेवाला) है अर्थात् जिसमें निरतिशय ज्ञान है उसमें सर्व ज्ञत्व है यह जनाताहै जो यह संशय हो कि शिव विष्णु आदिको ईश्वर मानना चाहिये इस संशय निवारणके अर्थ आगे सूत्रमें विशेषता वर्णन करतेहैं ॥ २५ ॥

स एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्॥२६॥

काल परिमाण रहित होनेसे पूर्ववालोंका भी गुरु है ॥२६॥

पूर्वमें जो शिव विष्णु आदि सिद्ध हुए हैं वह कालके अधीन हैं उत्पत्ति प्रलयको प्राप्त होतेहैं ईश्वर काल अधीन वा काल परिमाण संयुक्त नहीं है इससे पूर्ववाले सिद्ध शिव विष्णु आदिकोंका भी गुरु है अर्थात् उनसे भी श्रेष्ठ है ॥ २६ ॥

तस्य वाचकः प्रणवः ॥ २७ ॥

उसका वाचक प्रणव है ॥ २७ ॥

उस ईश्वरका वाचक प्रणव (ॐकार) है अर्थात् ॐ यह ईश्वरका अति उत्तम नामहै केवल इस एक नामसे ईश्वरके अनेक नाम गुणोंका ग्रहण होता है अ उ म यह तीन अक्षर मिलकर ॐ होताहै अ-कार विराट् अग्नि विष्णु आदि अर्थका वाचक है उ-कारसे हिरण्यगर्भ शंकर तैजस नामोंका ग्रहण होताहै म-कारसे ईश्वर प्राज्ञ प्रकृति आदि नामोंका ग्रहण होताहै अब

इन सबका अर्थ भाषामें वर्णन किया जाताहै ईश्वर विराट् है [अर्थ] विविध प्रकारके चर अचर जगत्में शोभित व प्रकाशितहै। अग्नि है [अर्थ] वेदशास्त्र ज्ञानवानोंसे सत्कार किया गया व पूजित है। विष्णु है [अर्थ] सम्पूर्ण आकाशसे पृथ्वी पर्य्यंत भूतोंमें व्यापक है। हिरण्यगर्भ है [अर्थ] सम्पूर्ण हिरण्य नाम तेजवान् पदार्थ सूर्य्य आदि जिसके गर्भमें अर्थात् अंतर्गत प्राप्तहैं ऐसा हिरण्यगर्भ ईश्वरहै। शंकरहै [अर्थ] कल्याणआनंदका करनेवाला है। तैजस है [अर्थ] तेजस्वरूप प्रकाशरूप है। ईश्वर है [अर्थ] सम्पूर्ण ऐश्वर्यको प्राप्त है। प्राज्ञ है [अर्थ] ईश्वर अतिउत्कृष्ट ज्ञानरूपहै। प्रकृति है [अर्थ] प्रकर्ष करके सब जगत्का उत्पन्न करनेवाला कारण है यह सब स्तुतिवाचक नाम और अर्थका ग्रहण ॐ शब्द मात्रसे होता है यह संक्षेप अर्थ है इससे अधिक प्रणवका अर्थ है इससे अनेक ईश्वरके नाम व स्तुतिवाचक प्रणव ईश्वरका सब नामोंमेंसे उत्तम नाम है ॥ २७ ॥

तज्जपस्तदर्थभावनम् ॥ २८ ॥

उसका जप उसके अर्थका भावनहै ॥ २८ ॥

उसका अर्थात् प्रणवका जप व उसका अर्थ जो ईश्वर है उसका भावन है अर्थात् प्रणवका जप करते हुए ईश्वरकी भावना करते हुए योगीका चित्त एकाग्रताको प्राप्त होता है व एकाग्र व जप अभ्यासमें प्राप्तचित्तमें परमात्मा प्रकाशित होता है ॥ २८ ॥

ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च२९॥

तिससे भिन्न चेतना साक्षात्कार होता है व विघ्नोंका भी अभाव होता है ॥ २९ ॥

तिससे अर्थात् प्रणवके जप व ईश्वर प्रणिधानसे जैसे ईश्वर असंग ज्ञानरूप क्लेश आदि शून्य हैं इसी तरह जीव चेतनरूप क्लेशरहित है सदृश होनेसे ईश्वरके ध्यानसे ईश्वरके अनुग्रहद्वारा जीवस्वरूप चेतन सब क्लेशोंसे

भिन्न साक्षात्कार होता है व योगके विघ्नोंका भी अभाव (नाश) होता है अब जो विघ्न चित्तको योगसे भ्रष्ट व पतित करते हैं उनको सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ २९ ॥

व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति भ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वा- नि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ॥ ३० ॥

व्याधि स्त्यान संशय प्रमाद आलस्य अविरति भ्रांति दर्शन अलब्धभूमिकत्व व अनवस्थितत्व जे चित्तके भ्रष्ट करनेवाले हैं यह विघ्न हैं ॥ ३० ॥

वात पित्त कफ व अन्नरस इन्द्रियोंकी विषमता व्याधि है चित्त अत्यंत चाहता है परन्तु वह कर्म करनेको समर्थ न होना स्त्यान है जिसमें संशय होता है उसका ग्रहण नहीं होता इससे संशय विघ्न है योगके अङ्गोंके अनुष्ठान करनेमें प्रीति न होना प्रमाद है शरीर व चित्तकी गुरुता (गरु- वई) से अर्थात् शरीर व चित्तमें आरामकी इच्छासे योगमें प्रवृत्त न होना आलस्य है विषयकी तृष्णा अविरति है यथार्थ रूपका ज्ञान न होना अन्य अन्य ज्ञान होना भ्रांति दर्शन है चित्तका समाधि भूमिमें स्थिर न होना अलब्धभूमिकत्व है समाधि भूमिको लाभ करके चित्तका उसमें स्थिर न रहना अनवस्थितत्व है यह नव प्रकारके विघ्न हैं ॥ ३० ॥

दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वा- सा विक्षेपसहभुवः ॥ ३१ ॥

दुःख दौर्मनस्य अंगमेजयत्व श्वास प्रश्वास विक्षे- पके साथ होते हैं ॥ ३१ ॥

कहेहुए व्याधि आदिसे अधिक दुःख आदि भी योगके विघ्नहैं व्याधि- से उत्पन्न शारीरिक दुःख काम आदिसे मानसिक दुःख दोनोंसे आध्या-

त्मिक दुःख व्याघ्र आदिसे उत्पन्न आधिभौतिक दुःख ग्रहपीडा आदि आधिदैविक दुःख विघ्न हैं इच्छाके विघातसे मनमें क्षोभ होना दौर्मनस्य है विना इच्छा अंगका काँपना अंगमेजयत्व है तथा विना पूरक रेचक विना इच्छा निष्फलवायुका भीतर जाना श्वास व कोष्ठके वायुका बाहर निकलना प्रश्वास विक्षेपोंके साथ यह होते हैं अर्थात् विक्षिप्त चित्तमें दुःख दौर्मनस्य आदि होते हैं ॥ ३१ ॥

तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ॥ ३२ ॥

तिनके नाशके अर्थ एकतत्त्वका अभ्यास करना चाहिये ॥ ३२ ॥

तिन विघ्नोंके नाशके अर्थ एकतत्त्व ईश्वरका अभ्यास ध्यान करना चाहिये चित्तके शुद्ध होने व एकाग्र होनेका उपाय क्याहै आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ३२ ॥

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ॥ ३३ ॥

सुखी प्राणियोंमें मित्रता दुःखी प्राणियोंमें दया पुण्य शीलोंमें अर्थात् धर्मवानोंमें हर्ष व अपुण्यशील अधर्मवानोंमें उदासीनता भावना करनेसे चित्तकी प्रसन्नता होती है ॥ ३३ ॥

सुखी प्राणियोंमें मित्रता भाव करनेसे ईर्षा मलकी निवृत्ति होती है दुःखीमें दया अर्थात् दुःख दूर करनेकी भावना करनेसे अपकार करनेकी इच्छारूप पापमल चित्तसे दूर होता है धर्मवानोंमें हर्ष भावना करनेसे असूया (पैलगाना) का पापमल चित्तसे दूर होता है पापी पुरुषोंमें मध्यस्थ वृत्ति अर्थात् हर्ष शोक दोनों न करके उदासीन रहनेकी भावना करनेसे क्रोधमल चित्तसे दूर होता है इस प्रकारसे रज तम गुण निवृत्त होनेसे

उत्तम शुद्ध सात्विक धर्म प्राप्त होता है व चित्त प्रसन्न व योग अभ्यासके योग्य होता है ॥ ३३ ॥

प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ॥ ३४ ॥

वा (या) प्राणके प्रच्छर्दन व विधारणसे ॥ ३४ ॥

मैत्री आदि जो उपाय चित्तके प्रसन्न होनेके पूर्व सूत्रमें कहा है उससे अन्य उपाय यह भी है यह सूचन करनेके अर्थ वा शब्द सूत्रमें कहा है प्राणवायुको नासिकापुट द्वारा रेचन करना (बाहर निकालना) प्रच्छर्दन है व उसको बाहर रोक रखना विधारण है प्रच्छर्दन विधारण करनेसे चित्त शांतहो स्थितिको प्राप्त होता है प्राणके जीतनेसे चित्तभी जीता जाता है प्राणायामसे पाप दूर होते हैं पाप दूर होनेसे चित्त स्थिर होता है॥ ३४॥

विषयवती वा प्रवृत्तिरुत्पन्ना मनसः स्थितिनिबंधनी ॥ ३५ ॥

वा विषयवती प्रवृत्ति उत्पन्न मनके स्थितिकी निबंधन करनेवाली है ॥ ३५ ॥

इस सूत्रमें भी उपायान्तर (अन्य उपाय) जनानेके अर्थ वा शब्द रक्खा है नासिकाके अग्रभागमें चित्तके संयमसे (संयम धारणा ध्यान समाधि तीनोंका समुदाय वाचक है जैसा आगे ग्रंथमें वर्णन किया गयाहै) गंध साक्षात्कार होता है जिह्वाके अग्रमें संयम करनेसे दिव्य रस मध्यमें संयमसे स्पर्श मूलमें संयमसे शब्द साक्षात्कार होता है यह गंध आदि विषयवती प्रवृत्ति जल्दी उत्पन्नहो विश्वासकी कारण होकर अति सूक्ष्म ईश्वरमें मनके स्थितिको प्राप्त करती है शास्त्रमें कहेहुए किसी अनुभवके होनेसे सूक्ष्ममें भी योगी श्रद्धापूर्वक संयममें प्रवृत्त होता है ॥ ३५ ॥

विशोका वा ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

विशोका वा (या) ज्योतिष्मती ॥ ३६ ॥

अधोमुख अष्टदल हृदयकमलको रेचक करके ऊर्द्ध्वमुख ध्यान करके उसके वीचमें स्थित ऊर्द्ध्व है मुख जिसका ऐसी सुषुम्णा नाडीमें संयम करनेसे मनसंवित होता है अर्थात् साक्षात्कार होता है वह मन सूर्य्य चन्द्र नक्षत्र मणिगणोंका जो जो तेज है उस उस रूपसे अनेक प्रकारका होताहै उनका सात्त्विक ज्योति मन है उसका कारण सात्त्विक अहंकार है उसका भी ज्योति है उसके ज्योतिस्स्वरूपके संयमसे संवित होता है वह संवित दो प्रकारका होता है ज्योतिष्मती, विशोका, प्रकाश प्राप्त होनेसे ज्योतिष्मती संज्ञा है व दुःख शून्य होनेसे विशोका संज्ञा है यह विशोका वा ज्योतिष्मती प्रवृत्ति उत्पन्न मनके स्थितिका हेतु होती है ॥ ३६ ॥

अन्य हेतु मनके स्थिर होनेका वर्णन करते हैं ॥

वीतरागविषयं वा चित्तम् ॥ ३७ ॥

अथवा वीतरागविषय चित्त ॥ ३७ ॥

वीतराग जो व्यास शुक आदि हैं उनका भाव व (विषय) जिस चित्तका विषय है वा होता है वह स्थिर होता है अर्थात् वीतरागोंके चित्तका भाव जो विराग है वह विषय है जिस चित्तका वह स्थिर होता है अर्थात् जिस चित्तमें विराग होता है वह स्थिर होता है यह फलितार्थ है ॥ ३७ ॥

स्वप्ननिद्राज्ञानावलंबनं वा ॥ ३८ ॥

या स्वप्नज्ञानावलंबन व निद्राज्ञानावलंबन योगीके चित्तके स्थिर होनेका हेतु है ॥ ३८ ॥

स्वप्नमें जो अत्यंत मनोहर स्वरूप किसी देवता वा महात्माका देखे कोई प्रकाश व तेजमान पदार्थ देखे जिससे चित्त प्रसन्न हो उसमें चित्त लगाने ध्यान करनेसे चित्त स्थिर होता है अथवा निद्रा जो सुषुप्ति है जो

सुख दुःखसे रहित हो शांत रहता है उस ज्ञानको चित्तमें धारण करे तो चित्त स्थिर होता है अर्थात् स्वप्न ज्ञानावलंबन निद्रा ज्ञानावलंबनसे भी योगीका चित्त स्थिर होता है ॥ ३८ ॥

यथाभिमतध्यानाद्वा ॥ ३९ ॥

वा यथाभिमत ध्यानसे ॥ ३९ ॥

जिसको चित्त चाहे जिसमें प्रीति हो उसीका ध्यान करे जब उसमें चित्त स्थिर होजायगा तब उससे भिन्न अन्यमें भी स्थितिको लाभ करेगा इससे यथारुचि ध्यान करनेसे भी योगीका चित्त स्थिति पदको लाभ करताहै ॥ ३९ ॥

परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्यवशीकारः ॥ ४० ॥

परमाणु व परम महत्त्वके अंततक इसका वशीकारहै ॥ ४० ॥

सूक्ष्मके अंतमें परमाणुतक व स्थूलके अंतमें परम महत्त्वतक इसका चित्तका वशीकारहै अभिप्राय यह है कि, सूक्ष्ममें परमाणुतक व स्थूलमें महत्त्वतक चित्त स्थिति पदको लाभ करताहै सूक्ष्म व स्थूल दोनों कोटिमें जाता जो चित्त है उसका कहीं रोक न होना व कहीं रागको प्राप्त न होना यह परवशीकार है इस वशीकारसे योगीका चित्त परिपूर्ण होकर स्थिर होकर फिर अभ्यास व कर्मकी अपेक्षा नहीं करता ॥ ४० ॥

जब चित्त स्थितिको लाभ करता है तब उसका क्या स्वरूप क्या विषय होता है यह वर्णन करते हैं ॥

क्षीणवृत्तेरभिजातस्यैव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदंजनता समापत्तिः ॥ ४१ ॥

क्षीणवृत्ति चित्तका अति स्वच्छ मणिके तुल्य ग्रहण कर्ता ग्रहण ग्राह्याम उनमें स्थित होना उनके स्वरूपाकार होना समापत्ति है ॥ ४१ ॥

जैसे अभिजात मणि अर्थात् स्वच्छ स्फटिकमणि जपाकुसुम आदिमें उपरक्त उनके समीप इन्हीके रक्त (लाल) आदि रंग वा रूपके सदृश भासित होता है इसी प्रकारसे अभ्यास वैराग्य करके रजोगुण तमोगुण वृत्तियोंसे रहित चित्त मणि सत्त्वरूप स्वच्छ ग्राह्य स्थूल सूक्ष्मभूत ग्रहण करण रूप इन्द्रिय व ग्रहण कर्ता पुरुष इनकी आकारताको प्राप्त होता है अर्थात् इनके रूपसे भासित होता है सूक्ष्मभूतमें उपरक्त सूक्ष्मभूत आकार स्थूलमें स्थूलस्वरूप आकार ग्रहणरूप इन्द्रियोंमें इन्द्रिय आकार व ग्रहण कर्ता पुरुष अवलंबनमें उपरक्त पुरुष स्वरूपसे भासित होता है इस प्रकारसे ग्रहीता (ग्रहण कर्ता) व ग्रहण व ग्राह्यपुरुष इन्द्रियभूतोंमें जिसमें जो स्वरूप आकार है उसमें स्थितहो उसी स्वरूप आकारसे भासित होता है अर्थात् स्वच्छ चित्त जिस पदार्थमें संयम करता है उसी रूपसे आप भासित होता है यह संप्रज्ञात योग है जो पूर्वही कहागया है ॥ ४१ ॥

तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ॥ ४२ ॥

तिनमें शब्द अर्थ ज्ञानके विकल्पोंसे मिलीहुई सवितर्का समापत्ति है ॥ ४२ ॥

समापत्ति समाधिको कहतेहैं पूर्व सूत्रमें जो ग्रहणकर्ता ग्रहण ग्राह्यरूप चित्तका भासित होना समापत्ति वर्णन किया है यही संप्रज्ञात योगहै जिसके सवितर्क सविचार सानन्द सास्मिता भेद कहे गयेहैं तिनके लक्षण यहां सूत्रोंमें क्रमसे सूत्रकार वर्णन करतेहैं तिनमें प्रथम सवितर्क समापत्तिका लक्षण इस सूत्रमें कहा है कि, तिनमें समापत्तियोंमें शब्द अर्थ व ज्ञानके विकल्पोंसे मिलीहुई जो समापत्ति है वह सवितर्क समापत्ति है जैसे गौ यह संज्ञा शब्द है जिस पदार्थका वाचक गौ शब्द है वह अर्थ है शब्द व अर्थका जो बोध होताहै वह ज्ञान है यद्यपि विकल्पसे यह तीन हैं तथापि विना विभागके इनका ग्रहण एक ऐसा गौ पदार्थका लोकमें कियाजाता है जब

T

इनके विभाग किये जाते हैं तब शब्द आदि भिन्न भिन्न जानेजातेहैं इनको भेद रहित अर्थात् शब्द व ज्ञानके भेद रहित गौ अर्थमें समाहित चित्त योगीको समाधिमें यथा कल्पित अर्थ मात्र साक्षात्कार होता है तथा शब्द अर्थ ज्ञानोंके विकल्पसे संकीर्ण समाधि प्रज्ञा यथा कल्पित शब्द मात्र वा ज्ञान मात्र स्वरूपसे साक्षात्कार होती है विकल्पत्वके विशेष न होनेसे यह संकीर्णा समापत्ति सवितर्का समापत्ति कहीजाती है ॥ ४२ ॥

स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्ये वार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ॥ ४३ ॥

स्मृति परिशुद्धि होनेमें स्वरूप शून्य ऐसा अर्थमात्रका भासित होना निर्वितर्का है ॥ ४३ ॥

परिशुद्धिसे अभिप्राय त्याग वा रहित होनेसे है शब्दोंकी शक्तिरूप संकेत विकल्पित अर्थोंमें ग्रहण कियाजाता है शब्द संकेत व श्रुत व अनुमान इनका ज्ञानही विकल्प है विकल्पकी कारण स्मृतिहै जो स्मृति रहित समाधि प्रज्ञामें उसका जो स्वरूप ग्रहणात्मक है उसमेंभी शून्यके तुल्य केवल ध्येय अर्थमात्र भाषित होता है वह निर्वितर्का समापत्ति है अर्थात् जो समाधि प्रज्ञा स्मृति रहितहो व स्मृतिके त्याग वा रहित होनेसे अपना जो स्वरूप ग्राह्यके ग्रहण करनेका है उसको त्याग करके ग्राह्यपदार्थ रूपके सदृश होतीहै वह निर्वितर्का समापत्ति है सवितर्काकी अपेक्षा यह परं प्रत्यक्षहै क्योंकि सत्य अर्थमात्र विकल्परहितका इसमें प्रत्यक्ष होताहै वह सत्य अर्थ अवयवी स्थूल पदार्थ है कोई यह शंका करते हैं कि परमाणु पुंजसे भिन्न अवयवी नहीं है अवयवी मानना मिथ्याज्ञान है इसका उत्तर यह है कि,जो अवयवी नहीं है परमाणुपुंजका एकत्र होना ही स्थूलरूप परिणाम है तो परमाणु कारणसे कार्यरूप स्थूल होना संभव नहीं होता क्योंकि जो स्थूल परिणाम परमाणुसे भिन्न माना जाय तो कारण कार्य सम्बन्ध नहीं रहता जैसे पट व घटमें पटसे घट व घटसे पट होना असंभव है और जो अभिन्न (पृथक्ता वा भेदरहित) अंगीकार कियाजावे तो परमाणुके सदृश सूक्ष्म अदृश्य होना चाहिये व

अदृश्य होनेपर भी जहांतक अवयवी होनेका बुद्धि द्वारा अनुमान होवे वह सब मिथ्या ज्ञान है सब मिथ्या होनेमें सब होनेका ज्ञानभी विषयके अभावसे कुछ न रहेगा जिस २ स्थूल पदार्थकी उपलब्धि (प्रत्यक्षता) होती है उनके अवयवी होनेसे होतीहै तिससे अवयवी है अवयवी ही महान् (स्थूल) होनेका कारण व निर्वितर्का समापत्तिका विषय होताहै यह संक्षेपसे वर्णन कियागया अब सविचारा निर्विचाराका वर्णन करतेहैं ॥ ४३ ॥

एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ॥ ४४ ॥

इसीके समान सविचारा निर्विचारा भेदसे सूक्ष्म विषयरूप वा सूक्ष्म विषयवाली समापत्तिव्याख्यान कीगई है ॥ ४४ ॥

इसके समान अर्थात् स्थूल विषयोंके समान जैसे स्थूल विषयवाली समापत्तिके दो भेद सवितर्का निर्वितर्का कहेगये हैं. इसी प्रकारसे सूक्ष्म विषयोंमें सविचारा निर्विचारा दो भेद हैं यह जानना चाहिये इससे स्थूल विषयाके तुल्य सूक्ष्मविषया समापत्ति व्याख्यान कीगई है यह समझना चाहिये यह सूत्रका अभिप्राय है फलितार्थ इसका यह है कि, जैसे स्थूल विषयमें सवितर्का निर्वितर्का दो भेदसे समापत्ति ध्येयमें होतीहै इसी प्रकारसे सूक्ष्म विषयमें अर्थात् सूक्ष्म ध्येयमें सविचारा निर्विचारा दो भेदसे समापत्ति होतीहै यथा घट आदि यह स्थूल विषय हैं इनमें प्रत्यक्षसे देखनेमें परमाणुओंको व गंध आदि सूक्ष्म मात्रासहित पृथिवी आदि भूतोंके पृथक् पृथक् होनेका बोध नहीं होता विचारसे होताहै सूक्ष्म भूत जे स्थूल भूतोंको परिणाम घट आदिकोंमें उपादानरूप कारण व देशकालके अनुभवसे अवच्छिन्न (देशकालके अनुभव संयुक्त) जे परमाणु हैं उनमें जो समापत्ति है वह सविचारा कही जाती है यथा घट आदि पदार्थोंमें जो परमाणु कारणसे उत्पन्न एक पदार्थ जाना जाताहै उसमें देशकाल-

कार्य कारणका विचार करना पदार्थके नीचे ऊपर इधर उधर यह देशहैं पदार्थके बोध होनेके समयमें वर्तमानकाल हैं गन्धमात्राकी प्रधानता संयुक्त पञ्च तन्मात्राओंसे (गन्ध रस रूप स्पर्श शब्दमात्रोंसे) पृथिवीके परमाणुओंकी उत्पत्ति विचार करनेमें पञ्चतन्मात्रा कारण है इसी प्रकारसे आप्य (जलवाले) परमाणुओंकी उत्पत्ति गन्धवर्जित रसकी प्रधानता संयुक्त चार तन्मात्राओंसे तैजस (तेजवालों) की गन्धरस रहित रूपकी प्रधानता संयुक्त तीनमात्राओंसे वायवीय (वायुवाले) परमाणुओंकी गन्धरस रूप रहित स्पर्शकी प्रधानता संयुक्त दो मात्राओंसे व नभ (आकाश) की शब्द तन्मात्रासे होनेमें जानना चाहिये यहां उत्पत्ति होनेसे कार्यभाव होना व एक दूसरेकी अपेक्षा सूक्ष्म व स्थूल भेदसे पर अपर होनेसे अभिप्राय है यह अनेक विशेषण विशिष्ट विकल्पित परमाणुओंमें समापत्ति सविचाराहै सब विशेषण विकल्परहित प्रज्ञास्वरूप शून्यके तुल्य अर्थमात्र परमाणुओंमें जो समापत्ति है अर्थात् अर्थमात्रका समाधिप्रज्ञामें भासित होना निर्विचारा समापत्ति है ॥ ४४ ॥

सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्य्यवसानम् ॥ ४५ ॥

सूक्ष्म विषय होनेकी अवधि (मर्य्यादा) अलिंगपर्य्यंत है ॥ ४५ ॥

पृथिवीके परमाणुओंका तन्मात्रा गन्ध सूक्ष्म विषय है तथा जलके परमाणुओंका रस अग्निके परमाणुओंका रूप वायुके परमाणुओंका स्पर्श आकाशका शब्द इनसे सूक्ष्म अहंकार अहंकारसे सूक्ष्म लिंग (महत्तत्त्व) महतत्त्वसे सूक्ष्म अलिंग (प्रकृति वा प्रधान) है प्रधानतक सूक्ष्मताका अन्त है प्रधानसे अधिक सूक्ष्म नहीं है जो यह कहाजावे कि प्रधानसे अधिक पुरुष आत्मा है तौ यथा प्रधान महत्तत्त्व आदिके रूपमें परिणमित होता है पुरुष नहीं होता इससे प्रधान ही सृष्टिका आदि सूक्ष्म उपादान कारण है पुरुष नहीं है सूक्ष्म कारणतक सूक्ष्मताके अन्तको वर्णन किया है ॥ ४५ ॥

T

ता एव सबीजा समाधिः॥ ४६ ॥

वेही सबीज समाधि हैं॥ ४६॥

ग्राह्य विषयमें जो पूर्वमें वर्णन की गई स्थूल अर्थमें सवितर्का निर्वितर्का व सूक्ष्म अर्थमें सविचारा निर्विचारा समापत्ति है वह बाह्य पदार्थके बीज संयुक्त हैं यह चारों मिलाके एक सवजि समाधि संज्ञासे कही जातीहै कोई ग्रहणकर्ता व ग्रहणमें भी विकल्प अविकल्प भेदसे असानन्दा (जिसमें आनन्द नहीं प्राप्त हुआ) व आनन्दा (जिसमें आनन्द प्राप्त हुआ) तथा आसस्मिता (अस्मिता रहित) व अस्मिता चार और मानते हैं अस्मिता ग्रहण कर्त्ता पुरुषको बुद्धिशक्ति द्वारा अपनाही करके मानना चाहिये जैसा आगे वर्णन किया है यह आठ समापत्ति सब सबीज समाधि हैं॥ ४६ ॥

निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः॥ ४७ ॥

निर्विचारके शुद्ध व स्वच्छ होनेमें प्रकाशरूप स्वाभाविकी प्रसन्नता होती है॥ ४७॥

रजोगुण तमोगुण मलके जो ज्ञानका आवरण व अशुद्धरूप है दूर होजानेसे बुद्धिसत्त्वका स्वच्छ व स्थिति प्रवाह होना वैशारद्य है जब निर्विचार समाधिके वैशारद्यकी प्राप्ति होती है तब योगीको अध्यात्म प्रसाद होताहै अर्थात् प्रकाश स्वभाव बुद्धिसत्त्वके स्वच्छ व निर्मल होनेसे अनेक पदार्थको एक साथ विनाक्रम सूक्ष्म व स्थूलको साक्षात् करता है जैसे पर्वतपर बैठेहुएको नीचे पृथिवीमें धरेहुए पदार्थोंका दर्शन वां ज्ञान होता है॥ ४७॥

ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा॥ ४८॥

तिसमें प्रज्ञाकी ऋतंभरा संज्ञा होती है॥४८॥

तिसमें(वैशारद्यके प्राप्त होनेमें)निर्विचार समाधिसे जो प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि उत्पन्न होती है उसकी ऋतंभरा संज्ञा है ऋत सत्यको कहते हैं सत्यको

धारण करती है अर्थात् उसमें भ्रम अज्ञानका सर्वथा नाश होजाता है यथार्थ सत्यज्ञान होता है इससे ऋतंभरा संज्ञा है ॥ ४८ ॥

श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ॥ ४९ ॥

विशेष अर्थ होनेसे श्रुतप्रज्ञा व अनुमान प्रज्ञासे भिन्न विषयरूप है ॥ ४९ ॥

पूर्व सूत्रमें जो ऋतंभरा प्रज्ञा कहीगई है वह श्रुतप्रज्ञा (वेदज्ञान) व अनुमान प्रज्ञा (अनुमान ज्ञान) दोनोंसे भिन्न है क्योंकि वेदमें जो शब्द हैं उनका संकेत विशेष ज्ञानके साथ नहीं है आगमज्ञान सामान्य विषयक है अर्थात् जैसा शब्दके अर्थसे जाना जाता है सामान्यज्ञान होता है ऋतंभरा प्रज्ञामें विशेष सत्य ज्ञान व पदार्थ साक्षात् होता है ऐसा ज्ञान वेद अध्ययनसे नहीं होता तथा प्रत्यक्षद्वारा सामान्य पूर्व सम्बंधज्ञानसे जहाँ व्याप्तिकी प्राप्ति है वहाँ अनुमान होता है जहां नहीं है वहां नहीं होता तिससे श्रुत व अनुमान ज्ञान विशेष विषयक नहीं है ऋतंभरा समाधि प्रज्ञामें प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष दूरदेश व निकटदेशमें जो पदार्थ हैं सबका सत्य ज्ञान होनेसे ऋत (सत्य) विशेष अर्थ विषय है विशेष अर्थ होनेश्रुत व अनुमान प्रज्ञा (बुद्धि वा ज्ञान) से भिन्न विषयरूप है ॥ ४९ ॥

तज्जः संस्कारोऽन्यसंस्कारप्रतिबंधी ॥ ५० ॥

तिससे उत्पन्न संस्कार अन्य संस्कारका प्रतिबंधन करनेवाला है ॥ ५० ॥

तिससे ऋतंभरा समाधिप्रज्ञासे उत्पन्न संस्कार अधिकार है वह अन्य व्युत्थान संस्कारका प्रतिबंधन करनेवाला (रोकनेवाला) है इस संदेह निवारणके अर्थ कि शब्द आदि विषय भोग संस्कार जो व्युत्थान अवस्थामें अति प्रबल हैं उससे समाधिप्रज्ञामें कैसे स्थिति होतीहै यह कहाहै कि समाधिप्रज्ञासे उत्पन्न संस्कार व्युत्थान संस्कारको रोकता है वैराग्य अभ्यासकी दृढतासे समाधि-

प्रज्ञामें व्युत्थान (विषय भोगमें इंद्रिय चलायमान वा लोलुप रहनेकी अवस्था) संस्कार क्षीण होजाता है बाधा नहीं करसक्ता समाधिप्रज्ञा उसकी बाधक होती है चित्तके दो कार्य हैं शब्द आदि विषयोंका उपभोग व विवेकख्याति संप्रज्ञात योगमें निर्विचार समाधिप्रज्ञामें क्लेश कर्माशय सहित शब्द आदि उपभोगमें प्रवृत्त जो प्रज्ञा है उसके संस्कारोंका निरोध होजाता है विवेक ख्याति संस्कार मात्र रहता है इससे समाधि प्रज्ञामें चित्त विषय भोगका निरादर करता है उसमें प्रवृत्त नहीं होता ॥ ५० ॥

तस्यापिनिरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ॥

उसके भी निरोध होनेमें सबके निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होता है ॥ ५१ ॥

उसके समाधि प्रज्ञाके भी निरोध होनेमें सब समाधि प्रज्ञाकृत संस्कारोंके निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होता है अर्थात् पर वैराग्यसे संप्रज्ञात समाधि प्रज्ञाके निरोध होनेसे उसके कार्य संस्कारोंका भी निरोध होजाता है कारणके अभावमें कार्य्यके उत्पत्तिका अभाव होता है वृत्तिमात्र सब संस्कारके निरोध होनेसे निर्बीज समाधि होताहै दीर्घ कालतक निरंतर साधनसे व परवैराग्यसे उत्पन्न संस्कारसे समाधि प्रज्ञा संस्कार विवेक ख्याति व विभूति प्राप्ति आदि हैं उनका निरोध होताहै सम्पूर्ण चित्तकी वृत्तियोंके अभाव होनेसे शुद्ध आत्मा आनन्द स्वरूपमें योगी लय होता है अब यह संशय है कि, प्रथम प्रत्यक्ष ज्ञान होता है प्रत्यक्ष द्वारा स्मृतिसे अनुमान आदिसे ज्ञान होता है सब वृत्तियोंके निरोध होनेमें प्रत्यक्ष व स्मृतिका होना संभव नहीं है प्रत्यक्ष व स्मृतिके अभाव होनेसे पर वैराग्यसे उत्पन्न संस्कार आत्मा मात्र साक्षात् होनेमें क्या प्रमाण है उत्तर यह है कि कालक्रम अनुभव करके निरुद्ध चित्तकृत संस्कारोंका अनुमान करना चाहिये अर्थात् जैसे मुहूर्त अर्द्धयाम व याम रात्रिदिन आदि क्रमसे कालकी अधिकता होती है इसी कालक्रम अनुभवसे वैराग्य अभ्यासके उत्कृष्ट वा अधिक होनेके अनुसार एक मुहूर्त आधे पहर एक पहर आदितक निरोध

T

(वृत्तियोंका रुकजाना) की अधिकता होते जानेसे योगीको अति उत्कृष्ट वैराग्य व अभ्यास होनेमें अति निरोध हो जानेका अनुभव होता है अर्थात् घटी क्षण पहरतक निरोध होनेसे योगीको अनुमानसे यह निश्चित होताहै कि, अति वैराग्य व अभ्यासका उत्कृष्ट होनेमें अतिनिरोध होना युक्त है इसतरह निरोधजनामक पर वैराग्यसे उत्पन्न संस्कारके होनेका प्रमाण है निर्बीज संस्कार प्रचयमें व्युत्थान व संप्रज्ञातसे उत्पन्न संस्कार व निरोधज संस्कारों सहित चित्त अपनी प्रकृतिमें लय होता है चित्तके लय होजानेसे सब वृत्तियोंका अभाव होजाता है निश्चल स्थिति प्राप्त होती है चित्तके प्रलय होनेमें पुरुष स्वरूप प्रतिष्ठित (अपने तत्त्व रूपमें प्राप्त) शुद्ध मुक्त रूप होता है ॥ ५१ ॥

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमद्धार्मिक प्यारे लालात्मज बाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि श्रीप्रभुदयालुनिर्मिते समाधिपादः प्रथमः समाप्तः ॥ १ ॥

अथ साधनपादप्रारंभः ।

अब द्वितीयपादमें साधनका वर्णन करते हैं ॥

तपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ॥१॥

तपस्स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान क्रियायोगहै ॥ १ ॥

ब्रह्मचर्य्य गुरुकी सेवा सत्य वचन अपने आश्रम धर्ममें प्रवृत्त होना साधन क्लेश सहना नियम व तौलसे भोजन करना इत्यादि यह तप है शरीरका सुखाना क्लेश देना मात्र तप नहीं है धातुकी विषमतासे योग नहीं हो सक्ता क्योंकि धातुकी विषमतासे रोग आदि होनेमें चित्त एकाग्र नहीं होता योग एकाग्रही चित्तमें होता है इससे तप आदि उपाय हैं जिससे रोग आदि विघ्नोंका निवारण व योगका साधन होता है प्रणव अर्थात् ॐ वा अन्य जे पवित्र ईश्वरके नाम हैं उनका जप वा मोक्ष शास्त्रका अध्ययन स्वाध्याय है ईश्वरमें चित्त लगाना सब क्रियाओंका ईश्वरमें समर्पण करना

कर्मके फलकी इच्छा न करना ईश्वर प्रणिधान है क्रिया योगसे क्या प्रयोजन है वह वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ॥ २ ॥

समाधिकी भावनाके अर्थ व क्लेश क्षीण करनेके अर्थ ॥२॥

क्रिया योगसे समाधि प्राप्त होती है व सब क्लेश क्षीण होते हैं इस लिये तपस्स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधानरूप क्रिया योग करना चाहिये अब जिन क्लेशोंकी निवृत्तिके लिये क्रिया योग करनेका प्रयोजन है वह वर्णन किये जाते हैं ॥ २ ॥

अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः ॥ ३ ॥

अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश यह पांच क्लेश हैं ३

अविद्या आदि पांच विपर्यय हैं यह कर्मबंधनको दृढ करते हैं परिणामको स्थापन करते हैं कर्मविपाक [कर्मफल] जाति आयु भोगरूप क्लेशके कारण होते हैं परन्तु सब क्लेशोंकी मूल कारण अविद्या है अविद्याके नाश होनेसे अस्मिता राग द्वेष आदि सब नष्ट होजाते हैं ॥ ३ ॥

अविद्याक्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ॥ ४ ॥

प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदाररूप उत्तरवालोंका क्षेत्र अविद्या है ॥ ४ ॥

पूर्व सूत्रमें अविद्या आदि पांच क्लेश वर्णन किये हैं प्रथम अविद्या उसके पश्चात् अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश उत्तर नाम पश्चात्का है इससे उत्तर वालोंसे अभिप्राय अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशसे है यह जो अविद्याके उत्तर अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेश हैं इन सबकी क्षेत्र अर्थात् उत्पत्तिभूमि अविद्या है अविद्या कारण है यह सब कार्य हैं अस्मिता आदि कैसे हैं

प्रसुप्त तनु विच्छिन्न व उदार हैं अर्थात् प्रसुप्ततनु विच्छिन्न व उदार भेदसे वर्तमान रहते हैं जे योगी प्रकृतिमें विवेक रहित लय होते हैं उनके क्लेश प्रसुप्त (सोयेहुएके समान) रहते हैं उनके बीजका नाश विना ब्रह्मज्ञानके योगसे नहीं होता जैसे सुषुप्त अवस्थामें इन्द्रिय व अर्थ सबका लय रहता है ज्ञान शक्तिमात्र चेतनमें स्थित रहती है जागनेपर फिर सब इन्द्रियोंसे विषयोंका ग्रहण होता है इसी प्रकारसे प्रकृतिमें लय हुए योगियोंके क्लेश चित्तमें प्रसुप्त रहते हैं जब उनका अवधिकाल आता है तब फिर प्रकट व प्रवृत्त होते हैं क्रिया योगमें विरुद्ध पक्षके सेवनसे अर्थात् तप आदिके धारण करने व भावनासे क्लेश तनु (क्षीण निर्बल) होते हैं अर्थात् क्रिया योग करनेवाले योगियोंके क्लेश क्षीण होतेहैं परन्तु सर्वथा उनका नाश नहीं होता और विषयी पुरुषोंके क्लेश विच्छिन्न व उदार होते हैं यथा जिस समयमें राग होता है उस समयमें राग उदार व क्रोध क्षीण होता है व जब क्रोध उदार होता है तब राग विच्छिन्न अर्थात् क्षीण होता है अर्थात् जिसमें प्रीति होती है उसमें प्रीति होनेके समयमें क्रोध नहीं होता जिसमें क्रोध होता है उसमें प्रीति नहीं होती कहीं कुछ क्रोध व कुछ प्रीति दोनोंका मेल रहता है इस तरह विषयी पुरुषोंके विच्छिन्न उदाररूप क्लेश होते हैं क्यों कि जिस सांसारिक पदार्थमें राग होता है व उसमें सुख बोध होता है उसमें भी विकार व हानि होनेसे अंतमें दुःख होता है व जिसमें द्वेष (वैर या विरुद्धबुद्धि होना) होता है उसमें वर्तमानहीमें दुःख विदित होता है इस तरह चार प्रकारसे अस्मिता आदिकोंकी स्थिति होती है जिस मुक्ति अवस्थामें विवेक व ज्ञानसे इन सबका नाश होता है वह अवस्था इनसे भिन्न है ॥ ४ ॥

अब अविद्या आदि प्रत्येकके लक्षण पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं ॥

अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ॥ ५ ॥

अनित्य अशुचि दुःख व अनात्मामें नित्य शुचि सुख आत्मा होनेकी बुद्धि अविद्या है ॥५॥

अनित्य आदिमें नित्य आदि वर्णन करनेके क्रमानुसार सूत्रका अर्थ व भाव यह है कि भ्रमसे अनित्यमें नित्य अशुचिमें शुचि दुःखमें सुख अनात्मामें आत्माका मानना अविद्या है ख्याति शब्द जो सूत्रमें है उसका अर्थ कथन है परन्तु यहां अभिप्राय माननेसे है क्योंकि जैसा माना जाता है वा बोध होता है वही कहा जाता है इससे बुद्धि अर्थ रक्खा गया है अनित्य देवता सूर्य्य आदिको नित्य मानकर उपासना अथवा स्वर्गलोक सुखको नित्य जानकर उसकी प्राप्तिके लिये साधन उपाय करना अनित्यमें नित्य ख्याति है आदि उत्पत्ति स्थानसे शरीरमें यह विचार करनेसे कि, प्रथम माताके उदरमें मूत्र संयुक्त स्थानमें माताके रुधिर व पिताके वीर्यसे उत्पन्न होता है व वर्तमानमें मल पसीना कफ मूत्र विष्ठाका स्थान है महा अशुचि व निषिद्ध बोध होता है ऐसे अशुचि शरीरमें ऊपरके मल जलसे धोये हुए सुगंध लगाये अलंकारवती कामिनीको देखकर यह मानना कि, यह चंद्रमा ऐसी अमृतके समान है स्वाद जिसके अंगस्पर्शमें नील कमलके पत्र ऐसे हैं नेत्र जिसके हाव भाव कटाक्ष युक्त ऐसी कामिनीके संग बडा सुख है इसी तरह पुरुषमें स्त्रीका मोहित होना भी जानना चाहिये यह अशुचिमें शुचि ख्याति है इसीके अंतर्गत अपुण्यमें पुण्य तथा दुःखमें सुख माननेके अंतर्गत अनर्थमें अर्थ जान लेना चाहिये दुःखमें सुख मानना यह है कि, विचारनेसे जो संसारमें सुख है सब दुःख रूप है क्योंकि जो वर्तमानमें सुख बोध होता है वह परिणाम ताप व संस्कार दुःख या गुण वृत्तियोंके विरोधसे विवेक करनेवालोंको सब दुःखही विदित होता है इसका वर्णन बिस्तारसे आगे किया जायगा ऐसा सांसारिक विषय दुःख रूपमें सुख जानना दुःख में सुख ख्याति है शरीरको या मनको चेतन मानना कि, शरीर व इन्द्रियहीके संयोग विशेषसे चेतनता रहती है संयोगमें विकार होनेसे शरीर अचेतन हो जाता है शरीरसे भिन्न आत्माका मानना मिथ्या

कल्पना है अनात्मामें आत्मा ख्याति है इन भेदोंसे अविद्या चार प्रकारसे होतीहै विद्याके न होनेको अविद्या कहते हैं परंतु अविद्या कहनेसे विद्याका सर्वथा अभाव न समझना चाहिये केवल विद्याके विपरीत या सत्य ज्ञानसे भिन्न भ्रमयुक्त ज्ञान जानना चाहिये क्योंकि जो विद्याका अभाव माना जाय तो आत्मामें विद्या वा सत्य ज्ञानका होना ही असंभव होगा ॥ ५ ॥

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ॥ ६ ॥

दृग्दर्शन शक्तियोंकी एकात्मता (एकही आत्मा जानना) यही अस्मिता है ॥ ६ ॥

दृक्शक्ति व दर्शनशक्ति इन दोनों शक्तियोंकी एकात्मता अर्थात् एक ही स्वरूप जाननेको अस्मिता कहते हैं दृक्शक्ति पुरुष है व दर्शनशक्ति बुद्धि है भ्रमसे बुद्धि सुख दुःख व पापकर्म आदि धारण करने व भोग्य अर्थका कारण है व आत्मा नित्य सुखी बंध रहित है परन्तु इन दोनोंकी एकात्मता भासित होना अर्थात् एकही होनेके समान मानकर आत्माको यह मानना कि मैं पापी हूं मैं दुःखी हूं अज्ञान वश ऐसा बोध होना अस्मिता है भोक्ताशक्ति पुरुष व भोग्यशक्ति बुद्धि है आत्मा शुद्ध चेतन है बुद्धि जड भ्रमवश अशुद्ध है इससे दोनों भिन्न आत्मा हैं इन दोनोंको एक आत्मा जानना अस्मिताहै ॥ ६ ॥

सुखानुशयी रागः ॥ ७ ॥

जो जो सुख पूर्वकालमें प्राप्त हो चुके हैं व जिस जिस पदार्थमें यह ज्ञान हुवा है कि, इससे सुख होता है अर्थात् यह सुखका साधन वा हेतु है ऐसे सुख व सुखसाधनपदार्थ जाने हुएको जो उस सुखके स्मरण होनेपर उस सुखके होनेमें तथा उस सुखसाधन पदार्थके या उसके सजातीय पदार्थके प्रत्यक्ष होनेपर सुख होनेके स्मरणसे उसमें तृष्णा वा लोभ होता है उसको राग कहते हैं यह सूत्रका फलितार्थ है शब्दार्थ नहीं क्योंकि भाषामें शब्दार्थ अनुवाद करने योग्य शब्द नहीं मिले जो यह संशय हो कि जिस सुखका

स्मरण हुवा उस सुखमें जो राग होता है वह तो स्मृतिपूर्वक होता है परन्तु प्रत्यक्ष हुएमें जो राग होता है उसमें स्मृतिकी अपेक्षा नहीं होती तो इसका उत्तर यह है कि, जिस पदार्थसे सुख होता है उसके प्रत्यक्ष होनेपर यह ज्ञान होनेसे कि, पूर्वमें इसी जाति वा प्रकारका पदार्थ सुखका हेतु वा सुखका देने-वाला हुवा था इससे यह भी सुखका हेतुहै इस स्मृति पूर्वक अनुमानसे उसकी इच्छा करताहै इससे व न जाने हुएमें इच्छा तृष्णा वा प्रीति न होनेसे प्रत्यक्ष हुएमें भी स्मृति पूर्वक राग कहना युक्त है व जिस समयमें जिससे व जो सुख प्राप्त हो रहा है उसमें तृष्णा वा इच्छा न होनेसे क्योंकि इच्छा न प्राप्त हुएमें होती है राग होना नहीं कह सक्ते इससे स्मृति पूर्वक राग कहनेमें दोष नहीं है ॥ ७ ॥

दुःखानुशयी द्वेषः ॥ ८ ॥

जो जो दुःख व जिससे दुःख पूर्वकालमें प्राप्त हुवा है उसके अनुस्मृति पूर्वक (स्मरण होनेपर दुःखमें या उसके साधनमें जो क्रोध होताहै उसको द्वेष कहते हैं पूर्व सूत्रके समान इस सूत्रका भी फलितार्थ वा भावार्थ लिखागयाहै) ॥ ८ ॥

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः ॥९॥

जो मरण त्रास स्वरसवाही अर्थात् पूर्वजन्मके अनेक बार मरनेके दुःख अनुभवसे उत्पन्न वासनासे आपहीसे वहने-वाला अर्थात् होनेवाला अज्ञानी व विद्वान्को भी उसी प्रकारसे होता है वह अभिनिवेश है ॥ ९ ॥

सम्पूर्ण जीवोंको जो मरनेका त्रास (भय) है उसको अभिनिवेश कहते हैं. सब जीव सदा जीनेकी इच्छा करते हैं मरनेसे डरते हैं यह मरण त्रास जिस तरह मूर्खको है उसी तरह विद्वान्को भी है जो यह संदेह हो कि, मूर्खमात्रको मरणत्रास होना यथार्थ है विद्वान्को ज्ञानसे दूर होजाना चाहिये तो इस संदेह निवारणके लिये मरणत्रासको स्वरसवाही कहा

स्वरसवाही होनेसे मूर्ख व विद्वान् दोनोंमें होता है स्वरसवाही अर्थात् स्वाभाविक अनेक जन्मके मरण दुःखके अनुभवसे उत्पन्न वासना समूहसे वहनेवाला मरण त्रास प्रवाह है यह जबतक असंप्रज्ञात समाधिको प्राप्त हो जीव मोक्षको नहीं प्राप्त होता तबतक सब प्राणियोंको जैसे अति मूर्खको उसी तरह विद्वान्को मरनेका भय होता है यह मरणत्रास अभिनिवेश क्लेश है जो यह शंका हो कि, मरण त्रास स्वरसवाही नहीं है अर्थात् पूर्व जन्मके मरण दुःखके अनुभवसे स्वाभाविक अपने ही प्रवाहसे नहीं वहता अर्थात् आपहीसे नहीं होता तो स्वाभाविक आपसे होनेके हेतुमें उत्तर यह है कि, यह प्रत्यक्षसे विदित होता है कि, उत्पन्न जो बालक है जिसको वर्तमान कालमें सुनने समझनेसे कुछ ज्ञान नहीं है वह भयानक मारनेवाले पदार्थको देख वा जानकर भयको प्राप्त हो रोने वा कांपने लगता है तथा अज्ञान जन्तुओंमें मरण भय देखकर पूर्व स्मरण दुःखका स्मरण अनुमानसे सिद्ध होता है नहीं ऐसा भय होना असंभव है अविद्या अस्मिता राग द्वेष अभिनिवेशको तम मोह महामोह तामिस्र अंधतामिस्र नामसे भी कहते हैं प्रकृति महत्तत्त्व अहंकार शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन आठ अनात्माओंमें आत्मबुद्धि होनेकी अविद्या वा तम कहते हैं अणिमा महिमा गरिमा लघिमा प्राप्ति प्राकाम्य ईशित्व वशित्व इन आठ ऐश्वर्यमें अहंभाव मानना कि, मैं छोटाहूं मैं बडा हूं मैं गुरु हूं मैं हलका हूं यह स्मिता वा मोह है इस मोहसे दिव्य अदिव्य भेदसे शब्द आदि दश विषयमें प्रीति होनेको राग वा महामोह कहते हैं इन दश विषयोंके भोग प्राप्त होनेमें जो विघ्न होते हैं उनमें द्वेष होनेको तामिस्र कहतेहैं अणिमा आदि आठ व शब्द आदि दश इन अठारह मनोरथोंके नाश होनेके भयको अभिनिवेश वा अंधतामिस्र कहते हैं अब यह जानना चाहिये कि क्लेश स्थूल व सूक्ष्म होनेके भेदसे दो विधके होते हैं क्रिया योगसे क्षीण हो सूक्ष्म होजाते हैं व विषय भोगमें स्थूल व प्रबल रहते हैं अब सूक्ष्मोंके नाशका उपाय कहतेहैं ९

ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ॥ १० ॥

ते सूक्ष्म लय होनेसे त्यागके योग्य हैं ॥ १० ॥

T

ते अर्थात् पूर्वमें जे पांच क्लेश प्रसुप्त तनु विच्छिन्न उदार भेदसे वर्णन किये गये हैं वह विवेक (यथार्थ आत्मज्ञान व ब्रह्मज्ञान) रहित योग अभ्यास (क्रिया योग अभ्यास) करनेवाले योगियोंके भी सर्वथा नष्ट नहीं होते प्रकृतिमें लय हुए योगियोंमें शक्तिमात्र प्रसुप्त रूपसे जैसा पूर्वही कहा गया है व न रहते हैं फिर जब उनका अवधिकाल विशेष आता है तब फिर अपने २ विषयोंमें सन्मुख होते हैं और प्रकृति लीन न हुए योग अभ्यास करनेवाले योगियोंमें भी विरुद्ध पक्ष जो योग अभ्यास है उससे क्लेश क्षीण व निर्बल रहते हैं परन्तु उनका नाश नहीं होता । यह जो क्लेश सूक्ष्म वीजरूप बने रहते हैं इनके त्याग होने वा नाश होनेका उपाय क्या है वह इस सूत्रमें वर्णन किया है कि तेजस्सूक्ष्मरूप क्लेश हैं वह लय होनेसे अर्थात् चित्तके लय (नाश) होनेसे त्यागके योग्य हैं अन्य उपाय नहीं है चित्तके लय होनेमें चित्तके साथही सब क्लेशोंका नाश होजाता है इसका अभिप्राय यह है कि, जब विवेक ख्यातिसे यथार्थ आत्मज्ञान होता है व अविद्याका अभाव होता है तब चित्तका लय होताहै चित्तके लय होनेमें जो सूक्ष्मरूप बीजभावसे रहते हैं उनका भी अर्थात् सर्वथा क्लेशोंका नाश हो जाता है ॥ १० ॥

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ॥ ११ ॥

वे वृत्तियां ध्यानसे त्यागने योग्य हैं ॥ ११ ॥

वे वृत्तियां जो स्थूल सुख दुःख मोहात्मिका हैं ईश्वरके ध्यानसे (ध्यानद्वारा) त्यागने योग्य हैं । जैसे लोकमें वहुत मैले वस्त्रको पहिले फींचकर धोते हैं फिर जब कुछ मैल कम हुवा तब साबुन लगाकर यत्नसे धोते हैं और जो मैल वस्त्रके सूतके अंतर्गत (भीतर) होगया है उसका सर्वथा नाश वस्त्रके नाश होनेपर होता है इसी तरह क्रियायोगसे अति सघन क्लेश विरल होते हैं अर्थात् बहुतसे कम होते हैं फिर वह ध्यानसे क्षीण वा सूक्ष्म होते हैं व जब सूक्ष्म चित्तका नाश होता है तभी नाशको प्राप्त होते हैं अन्यथा नहीं होते ॥ ११ ॥

क्लेशमूलःकर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः॥१२॥

क्लेश है मूल जिसके ऐसा कर्माशय दृष्ट व अदृष्ट जन्म वेदनीय भेदसे दो प्रकारका होता है॥ १२॥

पुण्य पाप कर्माशयसे काम लोभ मोह क्रोध उत्पन्न होते हैं कर्माशय दो प्रकारका होताहै एक दृष्टजन्मवेदनीय व दूसरा अदृष्टजन्मवेदनीय दृष्टजन्मवेदनीय वह है जो इसी वर्तमान जन्ममें जानने योग्य हो या जाना जाय। अदृष्टजन्मवेदनीय वह है जो जन्मान्तरमें जानने वा होनेके योग्य होवे कर्माशय काम लोभ मोह क्रोध युक्त हो उनके साधन वा विषय न प्राप्त होनेमें अथवा प्राप्त होकर नष्ट होनेमें क्लेशका कारण होता है इससे क्लेशका मूल है अत्यंत प्रवृत्त होनेसे मंत्र तप समाधिद्वारा ईश्वर देवता महर्षियोंके आराधनसे जो सिद्धि प्राप्त होती है वह शीघ्रही (तुरतही) फलको देती है। यह पुण्य कर्माशय है और तपस्वी महात्माओंके अपकार अनादर करने आदिमें अत्यंत प्रवृत्त होनेसे पाप कर्माशयसे जल्दी दण्ड फल मिलता है यथा पुण्यकर्म ईश्वरआराधनसे ज्ञान सिद्धि विभूति वर्तमान ही शरीरमें प्राप्त होती हैं व अधर्म आचरणसे क्लेश ग्लानि रोग निरादर वर्तमानही शरीरमें प्राप्त होती हैं यह पुण्य अपुण्य दृष्टजन्मवेदनीय है अथवा यह भी दृष्टांत होसक्ताहै कि, जैसे पुण्य कर्मसे नन्दीश्वर अत्यंत मंत्र तप समाधिद्वारा ईश्वर आराधनसे वर्तमान ही शरीरमें देवता होकर दीर्घायु (बडीउमर) को प्राप्त हो दिव्य भोगको लाभ किया, तथा पापकर्माशयसे अपराध करनेसे महर्षिके शापसे नहुष सर्पयोनिको प्राप्त हुवा यह दृष्टजन्मवेदनीय है व अदृष्टजन्मवेदनीय यह है यथा धर्मसे स्वर्ग व अधर्मसे नरक शरीरके नाश होनेके अनन्तर होना आप्तवाक्यसे जाना जाता है॥ १२॥

सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः॥ १३॥

मूल होनेमें अर्थात् मूलरूप क्लेशोंके होनेमें उसका (कर्माशयका) फल जाति (जन्म) आयु (उमर) व भोग होता है॥ १३॥

क्लेश मूल होनेमें कहनेसे अभिप्राय यह है कि, क्लेशोंके मूल होने अर्थात आदिमें कारण होनेके अनन्तर क्लेश या क्लेशोंसे उत्पन्न जो कर्माशय होता है उसका फल जन्म आयु व भोग रूप होता है । क्लेशमूलरहित कर्माशय फल आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) नहीं होता, जैसे छिलका सहित और जो अग्निसे दग्ध नहीं होता वह धान जमता है और जो छिलका रहित अथवा दग्ध (आगसे भुजा हुवा) हो जाता है वह नहीं जमता । इसी तरह क्लेशमूल कर्माशय जिसका संस्कारबीज असंप्रज्ञात समाधि व ज्ञान-अग्निसे दग्ध नहीं हुवा वही जाति (जन्म) आयु भोग रूप विपाकका कारण होता है । जातिसे देवता मनुष्य तिर्य्यक् आदि उत्कृष्ट निकृष्ट योनियां होने व आयुसे नियत न्यून अधिक कालतक देह व प्राणके संयोग रहनेसे व भोगसे इन्द्रियोंसे (इन्द्रियोंके द्वारा) विषय लाभ करने व दुःख सुख प्राप्त होनेसे अभिप्राय है, यही कर्माशयके फल हैं । अब यह विचार कियां जाता है, कि एक कर्म एक जन्मका कारण होता है ? या एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण होता है,अथवा अनेक कर्म एक जन्मके कारण होते हैं,अर्थात् जन्मको प्राप्त करते हैं विचारनेसे एक एक जन्मका कारण होना संभव नहीं होता क्योंकि अनादिकालसे पूर्व जन्मोंमें कियेगये कर्मोंमेंसे जो कर्म शेष (बाकी) रहे हैं और वर्तमान कर्म जो हैं इनके फलके क्रमके नियमका अभाव सिद्ध होनेसे यह सत्य होना अंगीकार नहीं हो सक्ता । तथा एक कर्म अनेक जन्मोंका कारण मानना यथार्थ नहीं है, क्योंकि जो एक एक कर्म अनेक जन्मोंके कारण माने जावेंगे तो बाकी रहे हुए कर्मोंके फल प्राप्त होनेके लिये कोई काल नहीं हो सक्ता अर्थात् कोई समय नहीं मिलसक्ता । और एक या अनेक कर्मोंका अनेक जन्मोंका कारण होना असंभव है, क्योंकि अनेक जन्म एक साथ नहीं होते, इससे एक ही साथ अनेक जन्मका कारण होना माननेके योग्य नहीं है । इस तरह विचारके अनन्तर निर्णयसे यह सिद्ध होता है, कि जन्मसे लेकर मरणतकके कालमें किये हुए पाप पुण्य कर्मसमूह कर्माशय विचित्र फलरूपसे अर्थात् कोई कर्म जल्द फल करनेवाले कोई विलंबसे फल करनेवाले व कोई दीर्घकालमें

फल करनेवालोंसे संस्कार स्थित होता है, इस पाप पुण्य कर्माशयकी अवस्थामें जब शरीरका त्याग होता है तब सम्पूर्ण मरणकालतकके जो कर्म हैं एक साथ मिलकर एक जन्मविशेषको करते हैं, अर्थात् सम्पूर्ण मरण समयतकके कर्मोंसे कोई जन्म विशेष होताहै । उस जन्ममें पूर्वजन्म कृत कर्मोंका भोग होता है । इसी तरह मुक्त होने तक कर्म जन्मभोग संस्कार बना रहता है । और यह कर्माशय जन्म आयु भोग तीन प्रकारका फल देता है, इससे इसको त्रिविपाक कहतेहैं व एक जन्म भोगके हेतु होनेसे एक भविक नामसे भी कहा जाताहै । इस त्रिविपाकके दो भेद हैं एक नियत-विपाक व द्वितीय अनियतविपाक दोमेंसे केवल नियतविपाक दृष्टजन्म-वेदनीय कर्माशयके एक भविक होनेका नियम है अर्थात् जिस कर्माशय-का फल नियत है वही त्रिविपाकरूप एक भविक होता है । किसी जन्म विशेष आदि फलका कारण होता है । अनियत विपाक अदृष्टजन्मवेद-नीय त्रिविपाक रूप एक भविक नहीं होता अनियतविपाककी तीन तर-हकी गति होती है, एक यह है कि, जो कृत पाप विशेष नहीं है अर्थात् न्यून है उसका पुण्यकर्मविशेषसे नाश होजाता है । जैसा श्रुतिमें कहा है, कि अति शुक्लकर्मसे अर्थात् पुण्यकर्मसे कृष्णकर्म (पापकर्म) का नाश होताहै श्रुति यह है "द्वे द्वे ह वै कर्मणी वेदितव्ये पापकस्यैको राशिः पुण्यकृ-तोपहन्ति तदिच्छस्व कर्माणि सुकृतानि कर्तुमिहैव कर्म कवयो वेदयन्ते" अर्थ-पापी पुरुषके दोप्रकारके अर्थात् कृष्ण व कृष्णशुक्ल कर्म होतेहैं, उन पापी पुरुषोंके कर्मोंको पुण्यकृत राशि अर्थात् पुण्यसमूह नाश करता है तिससे पुण्य कर्मोंके करनेकी इच्छा करो । इस संसारमें विद्वान् जन सुकृत ही को कर्म व उत्तम जानतेहैं । कर्म तीन प्रकारका कहा गया है कृष्ण (पाप) व कृष्णशुक्ल (पाप व पुण्य मिला हुआ) व शुक्ल (केवल पुण्य) इससे कहाहै कि, कृष्ण (पाप) व कृष्णशुक्ल (पापपुण्य) केवल-पुण्य समूहसे नाशको प्राप्त होते हैं । दूसरा यह है कि प्रधान (मुख्य) पुण्यकर्ममें जो न्यून पाप कर्म कुछ मिलजाता है वह प्रायश्चित्त परिहारसे नष्ट होसक्ता है व प्रधान पुण्य कर्मको या उसके फलको बाधा नहीं कर-

सत्ता। तीसरा यहहै कि, नियत विपाक (नियत फलदायक प्रधान कर्म) से तिरस्कारको प्राप्त जो नष्ट भी नहीं होता बीजमात्र बहुत कालतक बना रहता है वह प्रधान कर्मके विपरीत अपना कुछ फल नहीं कर सक्ता जब अन्य निमित्तकी सहायता अपने अनुकूल पाता है तब फल करता है। इससे अर्थात् अनियत विपाकके न्यून होनेसे व पुण्यकर्मके उदयसे नष्ट होजाने अथवा प्रधान कर्ममें मिलजानेमें कुछ अपना फल न कर सकने व प्रायश्चित्तके योग्य होनेसे अथवा नियतविपाक प्रधान कर्मसे तिरस्कारको प्रा बीजमात्र बहुत कालतक रहनेसे अनियतविपाक अदृष्टजन्म वेदनीयके एकभविक होनेका निषेध किया है व केवल नियत विपाक दृष्ट जन्म वेदनीय एक भविक होनेका नियम कहा है इस प्रकारसे कर्म गति विचित्र व दुर्ज्ञेय (कठिनतासे जाननेके योग्य) वर्णन की गई है ॥ १३ ॥

ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ॥१४

ते पुण्य व पाप हेतुक होनेसे आनन्द व दुःख फलवाले हैं।

जो पूर्वसूत्रमें वर्णन किये जाति आयु व भोग हैं वह जे पुण्य हेतुसे अथवा होते हैं वह सुख फलवाले हैं वा होते हैं और जो पाप कर्म हेतु (कारणसे)हैं या होते हैं वह दुःखफलवाले हैं वा होतेहैं यह अर्थ है॥ १४

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ॥ १५ ॥

परिणाम ताप व संस्कार दुःखोंसे व गुणवृत्तियोंके विरोधसे विवेकियोंको सब दुःखही है ॥ १५ ॥

पूर्वमें स्थूल सूक्ष्म क्लेश वृत्तियोंको हेय (त्यागने योग्य) वर्णन किया अब यह संदेह होता है कि, जो पापहेतुक हैं जिनका फल दुःख है उनको हेय कहना उचित है परन्तु जो पुण्यहेतुक हैं जिनका फल सुखभोग उनको क्यों हेय अर्थात् त्यागनेयोग्य कहाहै यह न कहना चाहिये,

संदेह निवारणके लिये इस सूत्रमें यह कहा है कि, विवेकियोंको जिस विषय सुखको विषयी अज्ञानी पुरुष सुख समझते हैं वह सुख भी विचारनेसे दुःख ही बोध होता है, अर्थात् जितना विषयभोग सुख है वह ऐसा नहीं है कि, विचारसे दुःखरूप विदित न होवे, इससे दुःखहीहै सुख मानना भ्रममात्रहै। क्यों दुःखहै, यह जनानेके लिये सूत्रमें यह वर्णन कियाहै किपरिणामताप व संस्कार दुःखोंसे अर्थात् परिणाम दुःख व ताप दुःख व संस्कार दुःखोंसे तथा गुण वृत्तियोंके विरोधसे दुःख होनेसे विवेक करनेवालोंको सम्पूर्ण सांसारिक सुख दुःखरूपही है । अब परिणाम आदि दुःखोंके जाननेके लिये सुख व दुःखके लक्षण पूर्वक प्रत्येकका पृथक् २ वर्णन किया जाता है प्रथम यह जानना चाहिये कि सुख (सांसारिक व विषयसुख) व दुःखके लक्षण क्या हैं लक्षण यह है कि भोगोंमें तृप्ति होनेसे अर्थात् तृष्णाकी निवृति होनेसे जो इन्द्रियोंका शांत होना है वह सुख है । व जिसके लिये तृष्णा है उसके प्राप्त न होनेसे अथवा प्राप्त प्रियपदार्थके नाश व वियोग होनेसे तथा जो हित नहीं है या जिसमें द्वेष है उसके प्राप्त होनेसे जो इन्द्रियोंमें अशांतता व्याकुलता होती है वह दुःखहै।अब परिणाम आदि दुःखोंके भेद यह हैं कि, रागसे जिस विषय भोगमें प्रवृत्ति होती है उसमें भोग होनेके समयमें जो सुख विदित होता है वह अंतमें दुःख प्राप्त होनेका कारण होता है इससे विषयी पुरुषोंको अविद्या (अज्ञानता) से यद्यपि वह सुख प्रतीत होता है परंतु विवेकदृष्टिसे परिणाममें दुःखका मूल होना जानकर योगीजन सुख होनेके अवस्था वा समयमें भी इसको क्लेशही जानते हैं यह परिणाम दुःख है परिणाम दुःखके उदाहरण यहहैं यथा रागसे विषयकी इच्छा करते हुएको जिस क्षणमें वह विषय प्राप्त होता है व तृप्ति होतीहै व रहती है उसी क्षण वा समयमात्रमें सुखकी स्थिति रहती है उसके निवृत्त होनेके अनन्तर फिर उसी विषय वा अन्य विषयके भोगमें तृष्णा होती है भोगके अभ्याससे तृष्णाकी निवृत्ति नहीं होती किन्तु तृष्णा अर्थात् रागकी वृद्धि होती है रागके बढनेसे अनेक मनोरथ होते हैं अनेक मनोरथ करते हुएको जो मनोरथ पूर्ण नहीं होता अर्थात् इष्टपदार्थ प्राप्त नहीं होता उसमें दुःख अवश्य होता है इसतरह विष-

यसुख व भोगका अभ्यास परिणाममें दुःखका हेतु (कारण) होता है और मुख्य अभिप्राय परिणाम दुःख होनेसे यह है कि, रागके बढनेसे मनोरथ पूर्ण होनेके लिये धर्म अधर्म कर्म करता है उससे परिणाममें संसार बंध अर्थात् जन्ममरण दुःख भोग फल प्राप्त होताहै अथवा जो विचाररहित अज्ञानसे इच्छानुसार अनुचित आचरण व विषयभोग करता है यद्यपि उसमें भोग समयमें उसको सुख होता है परन्तु अंतमें वह दुःखका कारण होता है अर्थात् उससे व्याधि दण्ड आदि जन्य दुःख प्राप्त होता है यह परिणाम दुःख है अथवा जिस विषयमें भोग समयमें सुख विदित होता है व सुखका साधन है वह अंतवान् है उसके साथही नाश होनेका भय लगा है नाश भयसे परिणाममें दुःखही है इत्यादि जो दुःखके साधन चेतन या अचेतन पदार्थ हैं अर्थात् दुःख देनेवाले हैं उनसे जो क्लेश होताहै अथवा जो उनके नाश करने वा पीडा देनेमें धर्म अधर्म कर्म लोभ मोहसे कर्ता है और वह परिणाममें बंध व पीडाका कारण होता है यह ताप दुःख है यथा सुख भोग वा इच्छा विरुद्ध अहित पदार्थमें द्वेष होताहै व उससे वर्तमानही समयमें ताप होता है व क्रोधसे उसके नाश करने व पीडा देने आदिमें मोहसे अनुचित आचरण करता है व उससे परिणाममें क्लेश फल प्राप्त होता है यह ताप दुःख है पूर्व हुए सुख दुःखके स्मरणसे फिर किसी उस सुख या दुःख साधन पदार्थमें राग व द्वेषसे प्राप्त होने या नाश करनेके प्रयत्नमें जो पुण्य पाप कर्म कोई प्राणी करता है व उससे जन्ममरण सुख दुःखरूप कर्म फल जो तत्त्वदृष्टिसे केवल दुःखरूप है प्राप्त होता है व इसीतरह जो संस्कार दुःखका सोता वा प्रवाह चलता है यह संस्कार दुःख है यह दुःख योगीहीको जान पडते हैं जैसे कोमल नेत्रमें ऊर्णतन्तु (ऊन) क्लेशसे विदित होता है अन्य कठोर अंगोंमें नहीं होता इसी प्रकारसे जिनके चित्त विचारकी कोमलतासे रहित कठोर हैं ऐसे विषयासक्तोंको इन दुःखोंका ज्ञान नहीं होता योगियोंको यह बोध होता है कि, सम्पूर्ण विषय भोग विष मिली हुई मिठाई है कि, खानेके समयमें अच्छा स्वाद जान पडता है परन्तु पीछे दुःख शरीरका नाश होना यह फल होता है इसीतरह विषयभोग करनेके समय

सुख होताहै अंतमें क्लेशही प्राप्त होता है इन औपाधिक दुःखोंके वर्णन कर-नेके अनन्तर स्वाभाविक दुःखोंको कहाहै कि, गुण वृत्तियोंके विरोधसे दुःख होनेसे सब दुःख हैं गुण वृत्तियोंके निरोधसे दुःख होना यह है कि, सत्त्व रज तम यह गुण हैं व सुखात्मक व दुःखात्मक व मोहात्मक प्रत्यय बोध यह आरंभ करते हैं यही इनकी वृत्तियां हैं व धर्म वैराग्य ऐश्वर्य अज्ञान अधर्म अवैराग्य (राग) अनैश्वर्य व ज्ञान यह सत्त्व आदि गुणोंके रूप भेद हैं इन गुण वृत्तियोंके परस्पर विरोध होनेसे दुःख होता है क्योंकि गुण वृत्तियां चंचल हैं चलायमान होनेसे चित्तकी प्रवृत्ति कहीं अधर्ममें होती है फिर अधर्मसे विमुख हो धर्ममें होती है ऐसे विरोधसे चित्तहीमें पश्चात्ताप ग्लानि आदिसे दुःख प्राप्त होता है तथा स्त्री मित्र आदि जिसमें प्रीति होती है व जिसको सुख साधन समझता है उसमें व अपने गुणवृत्तियोंमें विरोध होनेसे दुःख होता है अथवा गुणवृत्तियोंके अनुसार जो मनोरथ है उसके विरुद्ध होनेमें दुःख होता है अथवा किसी अनुचित आचरणमें इच्छा होती है व दोष विचारनेसे संकोच तथा भय होनेके विरोधसे अभिलाषा पूर्ण न होनेमें दुःख होता है इसतरह विवेक करनेवालोंको परिणाम आदि दुःखोंसे मिला हुआ सब सांसारिक सुख दुःखही है ऐसा बोध होता है इससे सांसारिक विषय सुख त्यागने योग्य है. अब यह जानना चाहिये कि, जैसे चिकित्सा शास्त्रमें रोग व रोगहेतु(रोगका कारण) व आरोग्य आरोग्य हेतु (आरोग्यका कारण) भैषज्यचतुष्टयका वर्णन है इसी प्रकारसे इस शास्त्रमें हेय (त्यागने योग्य अर्थात् दुःख) हेय हेतु (दुःखका हेतु) मोक्ष व मोक्षके उपायका वर्णन है दुःखमय संसार हेय है माया व पुरुषका संयोग जो संसारका हेतु है वह हेयहेतु है माया पुरुषके संयोगकी अत्यंत निवृत्ति होना अर्थात् दोनोंका अत्यंत वियोग होना मोक्ष है और ज्ञान मोक्षका उपाय है अब हेय क्या है यह आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

हेयं दुःखमनागतम् ॥ १६ ॥

आनेवाला दुःख हेय है ॥ १६ ॥

जिस दुःखका भोग हो चुका वह व्यतीत होनेसे हेय नहीं होसक्ता हूँ जिसका भोग हो रहा है भोग समयमें उसका त्याग नहीं है इससे जो आनेवाला दुःख है वही हेय (त्यागने योग्य) रहता है उसको प्रथमसे उपाय करके त्यागना चाहिये ॥ १६ ॥

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ॥ १७ ॥

द्रष्टा व दृश्यका संयोग हेयहेतु है ॥ १७ ॥

द्रष्टा जो जाननेवाला चेतन पुरुष है व दृश्य जो ज्ञेय (जानने योग्य) त्रिगुणात्मक प्रकृतिके कार्य्यभूत इन्द्रियरूप भोगके विषय हैं उनका संयोग हेय हेतु है अर्थात् दुःखका कारण है दृश्यका लक्षण आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १७ ॥

प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ॥ १८ ॥

जो प्रकाशस्वभाव (ज्ञानस्वभाव) क्रियास्वभाव स्थिति स्वभावरूप अर्थात् सत्त्वगुण रजोगुण तमोगुण रूप भूत व इन्द्रियात्मक है और भोग व अपवर्ग (मोक्ष) के निमित्त है वह दृश्य है ॥ १८ ॥

इस सूत्रमें प्रकाश शब्दका अर्थ बुद्धि वा ज्ञान है व शील शब्द जो संस्कृत सूत्र वाक्यमें है उसका अर्थ स्वभाव रक्खा गया है सत्त्वगुणको स्वभाव प्रकाश (बुद्धि) व रजोगुणका स्वभाव क्रिया है और प्रकाश व क्रिया दोनोंसे रहित होने अर्थात् अज्ञानता व जडताको स्थिति कहते हैं, यह स्थिति तमोगुणका स्वभाव है इससे सत्वगुणको प्रकाशस्वभाव, रजोगुणको क्रियास्वभाव और तमोगुणको स्थितिस्वभाव नामसे महर्षि सूत्रकारने वर्णन किया है सत्त्वगुणमें कोमलता व बुद्धिस्वभाव होनेसे तापकी प्राप्ति होती है रजोगुण ताप करनेवाला है इन दोनोंके तप्य वं तापक होनेमें तमोगुणसे मोह होता है जिससे पुरुष (आत्मा) यह मानता है कि, मैं तापमें

T

हूँ मुझे यह ताप है इत्यादि यह तीनों गुण एक दूसरेके सम्बन्ध व सहायता सहित अविवेकीको भोगने योग्य व विवेकीको त्यागने योग्य होते हैं जब यह तीनों गुण विभागरहित समताको प्राप्त होते हैं एक दूसरेमें भेद होनेका ज्ञान नहीं होता उस समय या अवस्थामें यह प्रधान या प्रकृति शब्दसे वाच्य होते हैं अर्थात् तीनों सम होनेकी अवस्थामें एकरूप होनेसे प्रधान या प्रकृति शब्दसे एक नामसे कहे जाते हैं. ऐसा प्रकाशक्रिया और स्थिति स्वभाववाले तीनों गुणोंका समुदाय रूप प्रधान जो कार्य्य रूपसे भूत व इन्द्रियात्मक है अर्थात् भूत जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश हैं व पांच ज्ञान इन्द्रिय व पांच कर्म इन्द्रिय यह दश बाह्य इन्द्रिय और बुद्धि अहंकार मन चित्त अन्तःकरण इन्द्रिय हैं इन भूत व इन्द्रियात्मक हैं अर्थात् इन भूत व इन्द्रियोंके स्वरूपसे विद्यमान है और जो भोग व अपवर्गके निमित्त हैं अर्थात् रजोगुण तमोगुण मिश्रित सत्त्वगुण व रजोगुण व तमोगुणसे भोगके निमित्त और सत्त्वगुणमात्र ज्ञानरूपसे अपवर्ग(मोक्ष)के निमित्त हैं वह दृश्य हैं बुद्धिही भोग व अपवर्गकी कारण है पुरुष दृश्य संयोगसे मोह मात्रसे अपनेको बंध व मोक्षमें मानता है जो यह संदेह होवे कि, बंध व मोक्ष बुद्धिमें होता है पुरुष क्यों मुक्त कहा जाता है ? इसका उत्तर यह है कि, यथा–राजाके सेवक योद्धा युद्धमें जय व पराजयको प्राप्त होते हैं व नाम राजाका कहा जाता है तथा बुद्धिमें मोह विकारसे बंध व ज्ञानसे मोक्ष होनेमें पुरुषका बंध व मोक्ष कहा जाता है ॥ १८ ॥

अब गुणोंके परिणाम भेद वर्णन करते हैं ॥

विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानिगुणपर्वाणि ॥ १९ ॥

विशेष अविशेष लिङ्गमात्र और अलिङ्ग ये गुणके पर्व (परिणाम) हैं ॥ १९ ॥

गुणपरिणाम भेदसे चार प्रकारके होते हैं–विशेष, अविशेष, लिंगमात्र और अलिंग, अब इनका पृथक् २ व्याख्यान किया जाता है. पांच भूत व

ग्यारह इन्द्रियोंकी सृष्टि क्रिया व्यापार व स्थूलकार्य्यरूप पदार्थ होनें
विशेषता है इससे इनकी विशेष संज्ञा है अर्थात् आकाश वायु तेज ज
पृथिवी यह पांच भूत शब्द स्पर्श रूप रस व गंध इन पांच तन्मात्राओं
विशेष स्थूल कार्य्य हैं इसी प्रकारसे पांच ज्ञान इन्द्रिय श्रोत्र (कान) त्व
[चमडा] नेत्र जिह्वा नासिका व पांच कर्म इन्द्रिय वाक् हस्त पाद गु
लिंग वा योनि ये दश बाह्य इन्द्रिय व ग्यारहवाँ अंतर इन्द्रिय मन
अस्मिता लक्षण रूप (अहंकार) के विशेष कार्य्य हैं इससे यह सो
गुणोंके विशेष परिणाम हैं अहंकार व पांच तन्मात्रा शब्द स्पर्श रूप रस गं
ये छः अविशेष हैं ये छः महत्तत्त्वके कार्य्य हैं सत्तामात्र महत्तत्त्व है उस सूक्ष्म
रूप महत्तत्त्वका कार्य अहंकार व अहंकारके कार्य शब्द स्पर्श रूप रस गं
हैं महत्तत्त्वके मुख्य होनेसे यह छहों महत्तत्त्वके परिणाम अविशेष नाम
कहे जाते हैं इनकी अविशेष संज्ञा इससे है कि, सूक्ष्म रूप स्थूल पदार्थों
कारण वा प्रकृति हैं विकार रूप स्थूल होनेमें इनकी विशेषता नहीं है अथ
इन छःसे शांत घोर व मूढ होनेके लक्षण विशेष नहीं होते इससे यह अ
शेष व पूर्वोक्त सोलह गुण परिणामोंमें यह लक्षण विशेष होनेसे वह वि
कहे जाते हैं प्रधानके आद्य [सबसे पहिले हुवा] परिणाम महत्तत्त्व
लिंगमात्र संज्ञा है इसका विशेष व्याख्यान यह है कि, चेतन पुरुषके स
प्रकृतिके संयोग होनेसे जो सबसे प्रथम बुद्धिरूप परिणाम होता है उस
महत्तत्त्व कहते हैं महत्तत्त्वही पुरुषार्थ क्रिया [पुरुषार्थ निमित्त क्रिया]
समर्थ होता है जबतक महत्तत्त्व परिणाम नहीं होता तबतक [प्रकृति] पु
षार्थ क्रिया [सृष्टि रचना] में समर्थ नहीं होसक्ती महत्तत्त्वके परिणाम
विकार अविशेष व अविशेषोंके विकार विशेष क्रमसे सृष्टिकी उत्पत्तिमें
हैं व लय होनेके समयमें इसी विरुद्ध क्रमसे अर्थात् कार्य वा विकार
परिणाम अपने अपने कारणोंमें लयको प्राप्त होकर क्रमसे महत्तत्त्वमें
होते हैं महत्तत्त्व सहित फिर सब प्रकृतिमें लीन होते हैं सूक्ष्मरूप प्रकृति
केवल अस्तित्व मात्र अनुमानसे सिद्ध होता है क्योंकि विना कुछ प्रकृति
सनमाननेके असतसे कुछ होना संभव नहीं है परन्तु उपादान होने मा

प्रकृतिका कारणत्व माना जाता है स्वाधीनतासे कार्य उत्पन्न करनेमें कारण नहींहै पुरुषार्थ क्रियामें महत्तत्त्वके समर्थ होने व कार्य्य [विकार] रूप परिणामोंमें सबसे प्रथम परिणाम व कार्य लिंगमात्र होने व उसके अनन्तर अन्य परिणामों [कार्य्यों] से वृद्धि क्रम होनेसे महत्तत्त्वकी लिंगमात्र संज्ञा है प्रकृतिके सूक्ष्म सामग्रीरूप मात्रसे रहने व पुरुषके संयोगसे विना महत्तत्त्व परिणामके हुए किसी कार्यका कारण वा कार्यलिंग न होनेसे प्रकृतिकी अलिंग संज्ञा है अर्थात् प्रकृति अलिंग नामसे कही जाती है वह गुणोंके पर्व [परिणाम] अवस्थाके चार भेद हैं यह गुण सब प्रकृति [माया] के परिणाम हैं पुरुष इनसे भिन्न है सांख्यदर्शन प्रकृतिसे लेकर स्थूल भूतोंतक कारण व कार्यभेदसे चौबीस गुण वर्णन किये हैं व पचीसवाँ पुरुषको कहा है पचीस गुणोंका विभाग यह सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणोंकी साम्यावस्था अर्थात् तीनोंकी एक सम अवस्थाको प्रकृति कहते हैं प्रकृतिको सृष्टिके उपादान कारण होनेसे मुख्य मानकर प्रधान व व्यक्त न होनेसे अव्यक्त नामसे भी कहते हैं प्रकृतिसे महत्तत्त्व कार्य, जैसा ऊपर वर्णन कियागया है होता है महत्तत्त्व [बुद्धि] का अनित्य व कार्य होना इस हेतुसे सिद्ध होता है कि पुरुषार्थ [पुरुषका अर्थ वा प्रयोजन अर्थात् भोग अथवा मोक्ष] के निमित्त कारण होनेसे उत्पन्न होकर नाशको प्राप्त होता है और अवस्थान्तरमें कभी उसके [महत्तत्त्वके] विषय गौ घट आदि ज्ञात होते हैं [जाने जाते हैं] कभी नहीं; कारण मात्र व नित्यमें ऐसा होना संभव नहीं है प्रकृतिरूप अलिंग अवस्थाका कोई कारण उत्पत्ति व विनाशका न होनेसे प्रकृति कार्यरूप नहीं है कारणरूप नित्य है महत्तत्त्वसे अहंकार कार्य वा परिणाम होता है अहंकारसे पांच तन्मात्रा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और ग्यारह इन्द्रिय दश वाह्य इन्द्रिय अर्थात् पांच ज्ञानइन्द्रिय व पांच कर्मइन्द्रिय व ग्यारहवां अन्तर इन्द्रिय मन और पांच तन्मात्राओंसे पांच भूत आकाश, वायु, तेज, जल व पृथिवी कार्य होते हैं इस क्रमसे चौबीस गुण ये व पचीसवां पुरुष सृष्टि उत्पत्ति व वृद्धिके कारण

होते हैं जिज्ञासुओंके समझनेके लिये यहां यह अधिक वर्णन करदिया है ॥ १९ ॥

अव दृश्यका व्याख्यान करनेके अनन्तर आगे सूत्रमें द्रष्टाको वर्णन करते हैं—.

द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोपि प्रत्ययानुपश्यः ॥२०॥

द्रष्टा चेतन मात्र शुद्ध है तथापि बुद्धिहीके समान जाननेवाला वा देखनेवाला है ॥ २० ॥

द्रष्टा (जाननेवाला अथवा देखनेवाला) पुरुष चेतनमात्र शुद्धहै बुद्धि भिन्न है बुद्धि पुरुषका स्वरूप नहीं है क्योंकि बुद्धिका विषय कभी ज्ञा होता है कभी नहीं अर्थात् जिस विषयका बुद्धिसे निश्चय या ज्ञान ए समयमें होता है वह बना नहीं रहता अन्य समयमें नहीं होता तथा सु दुःख मोहात्मक अर्थोंको समय समय वा क्षण क्षणमें बुद्धि ग्रहण वा निश्च करती है यह सुख आदि तीनों गुणोंके परिणाम होनेसे बुद्धि त्रिगुण रू है इन हेतुओंसे बुद्धि अनित्य व परिणामिनी है और पुरुषको संप्रज्ञात व्युत्थान अवस्थाओंसे सदा विषय ज्ञात होनेसे और पूर्वज्ञात पदार्थोंका स्म रण या उनकी पहिचान होनेसे पुरुष सदा ज्ञाता नित्य, परिणाम (स्वरू पमें भेद होना) रहित है परन्तु यद्यपि चेतनता या ज्ञानशक्तिमात्र पुरुष होने व अन्य धर्म व विकाररहित होनेसे पुरुष चेतनमात्र शुद्ध है और बुद्धि भिन्न है तथापि अविवेकसे बुद्धिसे अपनेको पृथक् न मानकर बुद्धिके सम नही शब्द आदि विषयोंको जानता है और सुख दुःख मानता है ॥ २० ॥

तदर्थ एव दृश्यस्यात्मा ॥ २१ ॥

उसीके अर्थ (उसीके लिये) दृश्यका आत्मा स्वरूप है ॥ २१ ॥

उसी (पुरुष) के लिये दृश्यका आत्मा [स्वरूप] है अर्थात् पुरुष जो भोक्ता [भोग करनेवाला] है उसीके भोगके लिये दृश्य भोग्य [भोग करने योग्य] पदार्थ है ॥ २१ ॥

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्य-
साधारणत्वात् ॥ २२ ॥

कृतार्थ प्रति नष्ट होनेंपरभी वह अन्यप्रति: साधारणत्वसे (साधारण होनेसे) नष्ट नहीं होता ॥ २२ ॥

कृतार्थ जो मुक्त हैं उन प्रति दृश्यके नष्ट होनेपर भी वह दृश्य[प्रधान] अन्य प्रति अर्थात् जो कृतार्थ नहीं हैं उनके प्रति नष्ट नहीं होता. फलितार्थ इसका यह है कि पुरुष अनेक हैं इससे जो मुक्त पुरुषका दृश्य संयोग नष्ट भी होजाता है तौभी अन्य जो संसारी पुरुष है उसमें दृश्यका संयोग बनारहताहै उससे दृश्य संयोगका नाश नहीं होता क्यों नहीं होता ? साधारण होने या बने रहनेसे अर्थात् अविद्यासे जो पुरुष व दृश्य [प्रधान वा माया] का संयोग है उसके साधारण बने रहनेसे; क्योंकि विना तत्त्वज्ञान जो उसके नाशका कारण है वह साधारण रूपसे बना रहता है केवल कृतार्थ पुरुषोंप्रति तत्त्वज्ञान होनेसे नाशको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥

स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः
संयोगः ॥ २३ ॥

अपने व स्वामी दोनोंकी शक्तियोंके स्वरूपोंकी उपलब्धि (प्राप्ति) का हेतु संयोग है ॥ २३ ॥

दृश्य (प्रधान) की अपनी शक्ति जो जड़तासे भोग्य मात्र होनेकी योग्यता है व स्वामी (पुरुष) की शक्ति जो चेतनतासे भोक्ता (भोगकरनेवाला)

होनेकी योग्यता है इन दोनोंके स्वरूपोंकी प्राप्तिका हेतु (कारण) संयोग है क्योंकि जबतक पुरुष व प्रधानका संयोग नहीं होता तबतक पुरुष भोक्ता व प्रधान भोग्य नहीं होसक्ता. पुरुष प्रधान (प्रकृति) के साथ भोगके लिये संयुक्त होकर भोग करता है इससे संयोगही पुरुषके भोक्ता व प्रधानके भोग्यका हेतु है सारांश इतनाही जानकर सरल व संक्षेप वर्णन किया है अन्य टीकाकारोंने शब्दार्थमें कुछ अधिक कल्पना करके अधिक व्याख्यान कियाहै परन्तु यहां उसके वर्णनकी आवश्यकता व उससे विशेष फल न समझकर छोडदिया है क्योंकि सूत्रकारने आपही वह सब आगे सूत्रमें वर्णन करदिया है ॥ २३ ॥

तस्य हेतुरविद्या ॥ २४ ॥

उसका हेतु अविद्या है ॥ २४ ॥

उसका (संयोगका) हेतु (कारण) अविद्या अर्थात् मिथ्याज्ञान है विपर्यय (विपरीत) ज्ञान अर्थात् अनित्यको नित्य अशुचिको शुचि दुःखको सुख अनात्माको आत्मा जानना मिथ्याज्ञान वा अविद्याहै अविद्याकी वासना सहित चित्त प्रलयमें प्रधानमें लीन होकर उत्पत्तिकालमें फिर प्रत्येक पुरुषमें सत्त्वगुणसे उत्पन्न होता है विना चित्तके लयहुए पर मोक्ष नहीं होता फिर संसारमें पतित होता है व चित्तपर वैराग्यसे लय होताहै जबतक अविद्यासे राग आदिका संस्कार बनारहता है तबतक संसारबन्ध नहीं छूटता संयोगसे अविवेकीको बंध व विवेकीको मोक्ष प्राप्त होताहै २४

तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् २५

उसके (अविद्याके) अभावसे संयोगका अभाव होना (दुःखनाश) है. वही चेतन पुरुषका मोक्ष है ॥ २५ ॥

यद्यपि पुरुष अपने निज स्वरूपसे मुक्त व विकार रहित है परन्तु अविद्या (मिथ्याज्ञान) से दृश्यके संयोग होनेसे बन्ध व दुःखको प्राप्त रहताहै अविद्याके अभाव होनेसे उससे हुआ जो संयोग है उसका अभाव (नाश) होता है यही हान अर्थात् दुःखका नाश है क्योंकि दृश्यका संयोगही दुःखरूप है जब पुरुष प्रधान वा दृश्यसे भिन्न होजाता है तब भोगरहित हो जाता है और जबतक संयुक्त रहताहै तबतक भोगमें व उसके फलमें परिणाम ताप आदि उक्त दुःखोंसे दुःखही होताहै दुःखका नाश होनाही पुरुषका कैवल्यसंज्ञक मोक्षहै ॥ २५ ॥

अब दुःख तथा सर्वथा संयोगको हेतु व हेतुमत्को अभेद मानकर हेय (त्यागने योग्य) अविद्याको हेय हेतु और संयोगके अभावको हान वर्णन करनेके अनन्तर हानके उपायको आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं—

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ॥ २६ ॥

मिथ्याज्ञानरहित विवेक ख्याति हानका उपाय है ॥ २६ ॥

पुरुष जो प्रधानके कार्यरूप परिणामिनी अनित्य बुद्धिको जो अपनेसे भिन्न है उसको अपना आत्मा (स्वरूप) मानता है और बुद्धिमें प्राप्त हुए सुख दुःखमें यह मानता है कि मैं सुखी हूं मैं दुःखी हूं यह मिथ्या ज्ञान है इसके विरुद्ध पुरुष (आत्मा) का सत्यज्ञानसे यह निर्णय करना कि मैं बुद्धि व दृश्य पदार्थसे भिन्न हूं विवेकख्याति है, मिथ्याज्ञान रहित जो ऐसी विवेकख्याति है उससे पर वैराग्यपूर्वक चित्तकी वृत्तियोंका निरोध होता है और क्लेश निवृत्त होते हैं इससे मिथ्याज्ञान रहित विवेक हानका (दुःखके नाश होनेका) उपाय है सम्पूर्ण दुःखोंसे छूटनाही मोक्ष है इससे यही मोक्षके प्राप्त होनेका उपाय है पुरुषका बुद्धिसे भिन्न होना व बुद्धिसे रहित होना जो इस शास्त्रमें कहा है इसमें जो यह संदेह होवे या जो यह संदेह करते हैं कि बुद्धि ज्ञानही है बुद्धिरहित पुरुषके माननेमें पुरुषको अचेतन मानना होगा बुद्धिरहित पुरुष कैसे हो-सक्ता है इसका उत्तर यह है कि, कार्यरूप परिणामिनी बुद्धि अर्थात् जो

त्रिगुणात्मिका भोग व विवेकरूप परिणामित (परिणामको प्राप्त) बुद्धि है उससे रहित होना कहा है उसके निवृत्त होनेसे मोक्ष होता है क्योंकि रजोगुणसे भोगमें प्रीति तमोगुणसे मोह व सत्त्वगुणसे विवेकरूप बुद्धि होती है इस विवेक रूपहीको दर्शन व ज्ञान नामसे कहते हैं व यही मोक्षका हेतु होती है और इसके अभावरूप रजोगुण तमोगुणात्मिका बुद्धि (बोध) को अदर्शन वा मिथ्याज्ञान कहते हैं यह दुःख व बंधका हेतु होती है इस त्रिगुणात्मिक बोधको बुद्धि वा प्रत्यय शब्दसे कहा है और जो पुरुषकी नित्य ज्ञानशक्ति है उस ज्ञानशक्ति स्वरूप बुद्धिकी निवृत्ति होनेका नहीं कहा यह मोक्षमेंभी बनी रहती है इससे पुरुषको मोक्षसुखके ज्ञान होने व पुरुषके चेतन होनेमें दोष नहीं आता केवल शब्दके नियत अर्थ व भाव न जाननेसे भ्रम होता है ॥ २६ ॥

तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ॥ २७ ॥

उसकी (विवेकी वा) ज्ञानीकी (प्रज्ञा) विवेकरूप बुद्धि (सात प्रकारकी प्रांतभूमि) उत्कृष्टअंत अवस्थावाली होतीहै अर्थात् विवेकवान् योगीके प्रज्ञाकी सातप्रकारकी उत्कृष्ट अंत अवस्था होतीहैं २७

विवेकीके प्रज्ञाकी सात प्रकारकी प्रान्त भूमि अर्थात् उत्कृष्ट अंत अवस्था होती हैं एक जैसा वर्णन किया गया है कि परिणाम ताप संस्कार दुःखोंसे और गुण व वृत्तियोंके विरोधसे जितना प्रकृति (माया) का कार्य है सब दुःखही है ऐसे दुःखको हेय (त्यागने योग्य) निश्चित होजाना कि उसमें संदेह व जाननेका अंत होजावै फिर अधिक जानने योग्य न समझा जावै दूसरी हेय हेतुओंका (द्रष्टा व दृश्यके संयोगरूप दुःख उत्पन्न करनेवाले शब्द आदि विषयोंमें राग द्वेष मोह कारणोंका) अति क्षीण होजाना तीसरी सम्प्रज्ञात समाधि अवस्थामें योगीको यह दृढ़ निश्चित होजाना कि निरोध समाधि असम्प्रज्ञातसमाधिहीसे हान

(दुःखोंका नाश) हो सक्ता है. चौथी विवेक ख्याति जो हानका उपाय है उसका अति भावित होना अर्थात् दृढ व सिद्ध किया जाना यह चार कार्य विमुक्तिरूप हैं और तीन चित्त विमुक्ति रूप हैं एक भोगोंमें प्रवर्त्त रहनेके अनन्तर चित्तका भोगोंसे उदासीन होकर मोक्षके लिये यत्न करनेमें प्रवृत्त होना दूसरी अविद्याके नाश होनेसे बुद्धिके गुणोंका अपने अपने कारणोंमें लय होकर कारण सहित नाशको प्राप्त होना और अविद्या कारणके अभावसे फिर उनका उत्पन्न न होना तीसरी जीतेहुए गुण सम्बंधसे रहित हो ज्ञानीका निर्मल मुक्तरूप होना इन सात रूपसे विवेक होनेका उपाय होना सिद्ध होता है परन्तु विना साधन सिद्धि नहीं होती है इससे अब आगे साधन वर्णन करनेका आरंभ करते हैं ॥ २७ ॥

योगाङ्गानुष्ठानादशुचिक्षये ज्ञानदीप्तिरा-विवेकख्यातेः ॥ २८ ॥

योगके अंगोंके अनुष्ठानसे अशुचि (विषयभोग वा अज्ञान) के नाश होनेसे या विवेकख्यातिसे ज्ञानकी दीप्ति बढ़ती है ॥ २८ ॥

योगके अंगोंके अनुष्ठानसे अशुचिका अर्थात् विषय भोग व विषय प्रीतिका नाश होता है अशुद्धिके नाश होनेसे ज्ञानकी दीप्ति (प्रकाश) बढती है जैसे अनुष्ठान वा साधनकी अधिकता होती जाती है वैसेही क्रमसे अशुद्धिकी क्षीणता होती जाती है जैसे अशुद्धिकी क्षीणता होती जाती है उस क्रमसे ज्ञानकी दीप्ति बढती है अथवा विवेकख्यातिसे अर्थात् गुणों व पुरुषके स्वरूपके विज्ञान (विशेषज्ञान) से ज्ञानकी दीप्ति बढती है ' आ ' शब्द जो सूत्रमें विवेक, शब्दके पूर्व है वह विकल्प अर्थवाचक है योगके अंगोंका अनुष्ठान अशुद्धिके वियोगका कारण है जैसे कुठार मूलसे वृक्षके वियोग (जुदा कर देने) का कारण है और विवेककी प्राप्तिका कारण है

जैसे धर्मसुखकी प्राप्तिका कारण है. कारण कै प्रकारके होते हैं ? यह जाननेके लिये कारणोंके भेद वर्णन करते हैं कारण नव प्रकारके होतेहैं- उत्पत्ति, स्थिति, अभिव्यक्ति, विकार, प्रत्यय, प्राप्ति, वियोग, अन्यत्व व धृति यथा–मन ज्ञानका उत्पत्ति कारण है पुरुषार्थता मनकी स्थितिका कारण है आहार शरीरके स्थितिका कारण है इत्यादि प्रकाशरूपकी अभिव्यक्ति (प्रकट होने)का कारण है तथा रूपज्ञान रूपकी अभिव्यक्तिका कारण है पंचमस्वर सुन्दरता आदि एकाग्र हुए मनके विकारके कारण हैं अर्थात् मनमें विकार उत्पन्न करनेके कारण हैं तथा अग्नि जो चीज पकाई जाती है उसका विकार कारण है धूम (धुवाँ)का ज्ञान अग्निका प्रत्यय कारण है अर्थात् अग्निके प्रत्यय (ज्ञान) होनेका कारण है योगके अंगोंका अनुष्ठान विवेकख्यातिकी प्राप्तिका कारण वही अशुद्धिका वियोगकारण है सोनार गहनोंका अन्यत्व कारण है शरीर इन्द्रियोंका धृति कारण है अर्थात् धारण करनेका कारण है इसी प्रकारसे यह नव कारण अन्य पदार्थोंमें योजित करने व विचारने योग्य हैं उक्त प्रकारसे योगके अंगोंका अनुष्ठान अशुद्धिके नाशका व विवेककी प्राप्तिका दो प्रकारका कारण होना विदित होताहै ॥ २८ ॥

अब योगके अंगोंको वर्णन करते हैं–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणा-ध्यानसमाधयोऽष्टावङ्गानि ॥ २९ ॥

यम नियम आसन प्राणायाम प्रत्याहार धारणा ध्यान और समाधि ये आठ अंग हैं ॥ २९ ॥

ये योगके आठ अंग हैं इनके अनुष्ठानविधिका यथाक्रमसे वर्णन किया जाता है ॥ २९ ॥

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहा यमाः ३० ॥

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह यम हैं ॥ ३० ॥

सब कालमें सब प्राणियोंके साथ वैर न रखना व किसी प्राणीका वध न करना अहिंसा है, वैर करना यह मानसिक हिंसा व: वध करना कर्म हिंसा है, दोनोंका त्याग करना अहिंसा धर्म है, मन व इन्द्रियोंसे जैसा जाना जाय या जैसा अपने ज्ञानमें होवै छलरहित वैसा ही कहना सत्य है परन्तु यह सब प्राणियोंके हितके लिये है परके घात व तापके लिये सत्य नहीं है परके तापके लिये जो सत्य है वह पाप है, परके द्रव्यको विना उसकी आज्ञा अनुचित रीतिसे गुप्त ग्रहण न करना व मनसे ऐसे ग्रहणकी इच्छा न करना अस्तेय है, उपस्थ इन्द्रिय (लिंग) को वश रखना जिससे काम उदय होनेका संभव हो ऐसे आचरण यथा स्त्रियोंके रूप देखनेमें चित्त लगाना स्त्रियोंसे हँसी वार्ता करना अंगका स्पर्श करना आदिका त्यागना ब्रह्मचर्य है, विषयोंके संचय करनेमें निन्दित परिग्रह दोष होने तथा रक्षा करनेमें व नाश होने व संग होनेमें राग वढने व हिंसा होने दोषोंको जानकर अंगीकार न करना अपरिग्रह है यह पाँच यम हैं ॥ ३० ॥

एते जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ॥ ३१ ॥

जो अहिंसा अथवा अहिंसा आदि यम जाति देश काल और समयोंसे अवच्छिन्न न हों अर्थात् जाति देश काल व समय विशेषके नियम व परिमाण युक्त न हों उनका सम्पूर्ण भूमि सब प्राणी सब काल और सब देशमें परिपालन करना महाव्रत है ॥ ३१ ॥

गौ मनुष्यको न मारना चाहिये मत्स्य छेरी वकरा मारनेमें दोष नहीं है यह जात्यवच्छिन्न अहिंसा है तीर्थदेशमें हिंसा न करना चाहिये अन्यत्र करना चाहिये ऐसा मानना देशावच्छिन्न अहिंसा है व्रत श्राद्ध आदि पुण्य दिनमें हिंसा न करूंगा यह कालावच्छिन्न और यज्ञमें देवताके लिये हिंसा करूंगा यह अन्यथा नहीं यह समयावच्छिन्न है इस प्रकारसे जो जाति

T

आदिकोंके साथ अवच्छिन्न न हो ऐसे अहिंसा धर्मको पालन करना अर्थात् ऐसा जानकर कि किसी प्राणीको वध करना व दुःख देना उचित नहीं है सब स्थान व सब कालमें हिंसा पाप है सर्वथा हिंसाको त्यागना महाव्रत है इसीके समान जाति देश काल व समयविशेषके नियम रहित सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रहके अनुष्ठान व पालन करनेको महाव्रत जानना चाहिये ॥ ३१ ॥

शौचसंतोषतपस्स्वाध्यायेश्वरप्रणि-धानानि नियमाः ॥ ३२ ॥

शौच संतोष तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान ये नियम हैं ॥ ३२ ॥

शौच पवित्रताको कहते हैं. पवित्रता दो प्रकारकी होती है. एक बाहरकी दूसरी भीतरकी मिट्टी व जलसे बाहरके अङ्गोंको शुद्ध करना स्वच्छ वस्त्र धारण करना ग्रास संख्यासे सूक्ष्म भोजन करना जिससे मल और आलस्य की वृद्धि न होवे यह बाहरकी पवित्रता है सत्य भाषण विद्याभ्यास सत्संग धर्माचरणसे असत्य मान मद ईर्षा मलसे चित्तको शुद्ध करना यह अंतर (भीतर) की पवित्रता है. प्राण रक्षा मात्रके लिये जो आवश्यक है उससे अधिक अन्न धन वस्त्र आदिकी इच्छा न करना संतोष है. क्षुधा पिपासा शीत उष्ण सहना कृच्छ्र चान्द्रायण आदि व्रत करना व अन्य धर्माचरण व शुभ गुणोंके आचरणसे आत्मा (मन) को तप्त सुवर्णके समान निर्मल करना तप है. मोक्ष विद्या विधायक वेद शास्त्रका पढना या प्रणवका जप करना स्वाध्याय है. सब कर्म प्राण आत्मा ईश्वरमें समर्पण करना ईश्वर प्रणिधान है. चाहै शय्यामें आराम करता चाहै आसनमें बैठा चाहै मार्गमें चलताहो जो स्वस्थ चित्त सम्पूर्ण कुतर्क जालसे रहित है और संसार बीजके नाश करनेवाले ज्ञानको प्राप्त है वह दोष रहित व नित्यमुक्त है ॥ ३२ ॥

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३३ ॥

कुतर्कके बाधा करनेमें प्रतिपक्ष (विरुद्धपक्ष) की भावना करना चाहिये ॥ ३३ ॥

जब मनमें कुतर्क हो तब उसके निवृत्त होनेके लिये विरुद्ध पक्ष जो विचार है उसकी भावना करना चाहिये यथा—जब ऐसे वितर्क उत्पन्न होवैं कि इसने मेरी हानि की है इसको मार डालूंगा अपने प्रयोजन सिद्ध होने या दूसरेकी हानिके लिये यह बात झूंठ कहूँगा इसका धन लेलूंगा इसकी सुन्दरी स्त्रीके साथ भोग करूंगा ऐसे अधमाचरणोंकी इच्छा रूप प्रबल वितर्कोंसे जब हृदयको बाधा होवै तब इस प्रकारसे वितर्कोंके प्रतिपक्ष रूप अर्थात् शत्रुरूप विचार व विरागकी भावना करै कि मैं महा अधम हूँ जो ऐसे घोर संसारमें पच करके बहुत काल अधर्म व कुकर्ममें वृथा व्यतीत करके गुरुकृपासे अच्छे संस्कारसे भगवत् शरणको प्राप्त हुवा हूं सब प्राणियोंके अभयपदको देनेवाला योग धर्म है उस प्राप्त योग धर्मको छोडकर फिर कुतर्क दुष्ट वासनामें पतित होता हूँ वा होरहा हूँ यह त्यागने योग्य है धर्मसे उत्तम कुछ नहीं है उसकी दृढता मुख्य है इस प्रकारसे मनको स्थिर व दृढ करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अब आगे सूत्रमें प्रतिपक्ष भावनाको स्पष्ट वर्णन करते हैं—

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ॥ ३४ ॥

लोभ क्रोध मोहपूर्वक मृदु मध्य अधिमात्रा संयुक्त कृत (किये गये) कारित (कराये गये) अनुमोदित (अच्छे समझे गये)हिंसा आदि वितर्क अनन्त

T

दुःख व अज्ञान फलवाले हैं ऐसा विचार करना प्रतिपक्षभावन (प्रतिपक्षकी भावना करना) है ॥ ३४ ॥

हिंसा आदि अधर्म आचरण कृत [किये गये] कारित [दूसरेसे करा गये] अनुमोदित [अच्छे समझे गये] यह सब वितर्क हैं. मांस व चर्म लिये मारना लोभ पूर्व्वक हिंसा है इसने हमारा अपकार [नुकसान किया है इस द्वेषसे मारना क्रोधपूर्वक हिंसा है बलिदानमें इस मो [अज्ञान] से मारना कि इससे धर्म व स्वर्ग प्राप्त होगा मोहपूर्वक हिं है अब कृत कारित और अनुमोदित इन तीनोंमेंसे पृथक् पृथक् प्रत्येक लोभ क्रोध और मोहपूर्वक होनेसे अर्थात् एक २ के तीन तीन भेद होने हिंसा नव प्रकारकी होती है फिर लोभ क्रोध मोहोंमें मृदुमात्रा [थोड़ा होना] मध्यमात्रा [न बहुत कम होना न बहुत अधिक होना] तीव्रमात्र [अधिक होना] यह तीन भेद होनेसे नव प्रकारमें एक एक तीन तीन भेद होजानेसे सत्ताईस २७ भेद होते हैं मृदु मध्य और तीव्र मात्राओंमेंभी एक एकमें तीन तीन भेद होनेसे अर्थात् मृदुमें मृ मृदु, मृदु मध्य, मृदु तीव्र, ये तीन; मध्यमें मृदु मध्य, मध्य मध्य मध्य तीव्र, यह तीन और तीव्रमें मृदु तीव्र, मध्य तीव्र, तीव्र तीव्र, तीन भेद होनेसे सत्ताईस भेदोंमें फिर एक एकमें तीन तीन भेद होजाने इक्यासी ८१ भेद होतेहैं फिर असंख्य प्राणियोंके भेद होनेसे निय विकल्प समुच्चय भेदसे अधिक भेद होजाते हैं इसी हिंसाके समान असत आदिके भेद समझना चाहिये यह वितर्क नरक आदि दुःख स्थावर आदि योनियोंमें प्राप्त होने अज्ञानके हेतु होनेसे अनन्त दुःख व अज्ञान फल करनेवाले हैं ऐसा वितर्कोंके विरुद्ध विचारना प्रतिपक्ष भावन है जैसे वध करनेवाला जिसको मारता है प्रथम उसको निर्बल व अपने अधीन करत है फिर हथियारसे काटनेमें दुःख देता है और प्राणरहित करता है उसी तरह निर्बल करनेसे वध करनेवालेके इन्द्रिय व शरीर परिणाममें निर्बल

होते हैं निर्वल होनेसे वल क्षीण व पराधीन होता है दुःख देनेसे नरक तिर्य्यक् योनि और प्रेत आदि योनिमें प्राप्त होता है दुःख भोग करता है प्राणरहित करनेसे आयु क्षीण होता है जन्मान्तरमें जो किसी पुण्यसे सुखको प्राप्त हुवा तो सुखभोगके लिये आयु थोडी होतीहै इसी प्रकारसे असत्य आदिसे परका अपकार और अधर्म करनेसे अनेक दुःखरूप फल होते हैं इससे सब वितर्क साधकको त्यागने योग्य हैं ॥ ३४ ॥

अव यम नियमके साधनसे क्या फल है या होता है वह वर्णन करते हैं—

अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः ॥ ३५ ॥

अहिंसाकी प्रतिष्ठामें (दृढ स्थितिमें) अर्थात् इस प्रकारसे चित्तमें अहिंसाकी दृढ स्थिति होनेमें कि फिर कभी हिंसाका भाव उदय न होय उसके समीपमें (अहिंसामें दृढता रखनेवाले योगीके समीपमें) वैरका त्याग होता है॥ ३५ ॥

जो योगी हिंसाको कर्मसे व मनसे सर्वथा त्याग देता है उसके हृदयसे वैरभाव दूर हो जाता है किन्तु उसके संग व समीपमें अन्य सव जीवोंका वैरभाव छूट जाता है भैंसा, घोडा, मूसा, विल्ली, सर्प, न्योरा आदि एक दूसरेसे वैरभाव त्याग देते हैं ॥ ३५ ॥

सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ॥ ३६ ॥

सत्यकी प्रतिष्ठामें क्रिया व फलका आश्रयत्व (आश्रय होना) सिद्ध होता है अर्थात् योगीके वाक् व मनोरथ क्रिया व फलके आश्रय होते हैं॥ ३६ ॥

जव धार्मिक मनुष्य निश्चयकरके केवल सत्यही मानता और कहताहै तव वह जो जो योग्य काम करता व करना चाहता है वह सव सफल

होजाते हैं सम्पूर्ण क्रिया व फल उसके वचन व इच्छामें आश्रित होते अर्थात् उसके सब मनोरथ व वचन पूर्ण व सत्य होतेहैं उस योगीके व अन्यको सुख व मनोरथ प्राप्त होताहै उसका वचन मिथ्या नहीं होता॥३६

अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ॥ ३७ ॥

चोरी न करनेकी प्रतिष्ठामें सब दिशा व स्थान रत्नस्थान होते हैं ॥ ३७ ॥

जब साधन करनेवाला मनुष्य शुद्ध मनसे सर्वथा चोरीको त्या देता है तब उसको सब स्थानमें वाञ्छित रत्न व उत्तम पदार्थ प्र होनेलगते हैं ॥ ३७ ॥

ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्यकी प्रतिष्ठामें सामर्थ्य प्राप्त होताहै ॥ ३८ ॥

ब्रह्मचर्य साधनमें अर्थात् उपस्थ (लिंग) इन्द्रियके संयम रख व्यभिचार करने विद्या पठन पाठन युक्त शुद्ध चित्त कामवर्जित होने शरीर व बुद्धिका बल बढता है सिद्धियां प्राप्त होतीहैं ॥ ३८ ॥

अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः ॥ ३९

अपरिग्रहकी दृढ़ता होनेमें अर्थात् विषयसे रहित होनेमें अपने जन्मान्तरके भेदोंका ज्ञान या विचार होता है ॥ ३९ ॥

जब मनुष्य सब विषयोंको त्यागकर सर्वथा जितइन्द्रिय होता है तब कौन था ? कहाँसे आयाहूं ?कौनहूं ? कहाँ जाऊंगा ? भूत भविष्यत् वर्तमा तीनों कालमें जन्मान्तरका विचार और क्या करनेसे मेरा कल्या होगा ? यह ज्ञान उसके चित्तमें स्थिर होता है ॥ ३९ ॥

शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः ॥ ४० ॥

शौचसे अपने अङ्गोंमें घृणा और परके अङ्गोंके साथ संयोग करनेकी मति होती है ॥ ४० ॥

पूर्वही जैसा शौच वर्णन किया है उस प्रकारसे शौच [पवित्रता] में दृढता होनेसे जब शौच करनेपर भी अपने शरीर व शरीरके अवयवोंमें मलिनता रहते अर्थात् बाहिर भीतर मल संयोग रहते देखता है सर्वथा शुद्ध नहीं होते तब औरोंके शरीर मलसे भरे जानकर योगी दूसरेसे अपने शरीर मिलानेमें संकोच व घृणा करके सदा अलग रहता है ॥ ४० ॥

यह बाह्य शौचका फल है अब अन्तरशौचके फलको वर्णन करते हैं–

सत्त्वशुद्धिसौमनस्यैकाग्र्येंद्रियजयात्मदर्शनयोग्यत्वानि च ॥ ४१ ॥

और सत्त्व (बुद्धि या अंतःकरण) की शुद्धि सौमनस्य (मनकी प्रसन्नता) ऐकाग्र्य इन्द्रियोंका जीतना आत्मज्ञानके योग्य होनेका फल होता है ॥ ४१ ॥

शौचसे, क्रमसे सत्त्वशुद्धि अर्थात् रजोगुण व तमोगुणके कार्यरूप ईर्षा आदिमल दूर हो जानेसे सत्त्वगुणरूप अंतःकरण शुद्ध होता है तब मनकी प्रसन्नता होती है उसके अनन्तर चित्तका ऐकाग्र्य होता है चित्तके ऐकाग्र्य होनेसे योगी इन्द्रियोंको जीतता है इन्द्रियोंके जीतनेसे आत्मज्ञानके योग्य होता है यह अन्तर शौचका फल है ॥ ४१ ॥

संतोषादनुत्तमसुखलाभः ॥ ४२ ॥

संतोषसे जिससे उत्तम अन्य सुख नहीं है ऐसा सुख प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥

संतोषसे तृष्णाके नाश होनेसे अति उत्तम सुख होता है महात्माओंने कहा है कि जो काम आदि और बडे बडे सुख संसारमें हैं वे सब दोष युक्त

है तृष्णाके नाश होनेसे जो निर्दोष सुख है अन्य सुख उसके सोलहवं कलाको नहीं तुलते ॥ ४२ ॥

कायेन्द्रियसिद्धिरशुचिक्षयात्तपसः ॥ ४३ ॥

तपसे अशुचिके (अशुद्धिके) नाश होनेसे शरीर व इन्द्रियोंकी सिद्धि होती है ॥ ४३ ॥

तपसे अशुद्धिका नाश और अशुद्धि अर्थात् आवरणरूप अज्ञानके ना होनेसे शरीर व इन्द्रियोंकी सिद्धि प्राप्त होती है शरीरसिद्धि अर्थात् अणिम दिक सिद्धि और दूर देशका देखना दूर देशके शब्दका सुनना आदि इन्द्रि यसिद्धिकी प्राप्ति होती है ॥ ४३ ॥

स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ॥ ४४ ॥

स्वाध्यायसे इष्ट देवताका संप्रयोग होता है ॥ ४४ ॥

स्वाध्यायसे अर्थात् इष्ट मंत्रके जपसे जो इष्ट देवता है उसका संप्रयो (साथ) अर्थात् इष्ट देवताका दर्शन होता है और इष्ट देवता उपासकं सब कार्य सिद्ध करनेमें सहायक रहता है अथवा इष्ट देवतासे य मुख्य परमात्माका ग्रहण है अर्थात् स्वाध्याय प्रणवके जप व आत्मनिरू पणसे परमात्माके साथ संयोग होता है फिर परमात्माके अनुग्रहकी सहा यता और अपने आत्माके सत्याचरण पुरुषार्थ प्रेमके संयोगसे जीव मुक्तिक प्राप्त होता है ॥ ४४ ॥

समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ॥ ४५ ॥

ईश्वरप्रणिधानसे समाधिकी सिद्धि होती है ॥ ४५ ॥

ईश्वरमें सब भाव समर्पण करनेसे योगी सुगमतासे समाधिको प्रा होता है ॥ ४५ ॥

तत्र स्थिरसुखमासनम् ॥ ४६ ॥

जिसमें सुखपूर्वक शरीर व आत्मा स्थिर हो वह आसनहै४६

जिसमें आत्मा व शरीर स्थिर अर्थात् निश्चल हो व सुख हो वह आसन है आसन वहुत प्रकारके हैं यथा पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, स्वस्तिक, दण्डासन, सोपाश्रय, पर्यंक, क्रौंचनिषदन, हस्तिनिषन्दन, समसंस्थान, स्थिर सुख आदि पद्मासनमें बायाँ चरण सिकोडकर दाहिनी जांघके ऊपर रक्खा जाता है व दाहिना चरण वायें जांघके ऊपर इसी प्रकारसे अन्य भद्रासन आदिके पृथक् पृथक् विधान व स्वरूपका वर्णन है परन्तु सव आसनोंके वर्णन करनेकी तथा उनके साधन करनेकी आवश्यकता नहीं है पद्मासन साधारण व प्रसिद्ध है और प्रयोजनके लिये अच्छा है महात्मा सूत्रकारके मतानुसार इन आसनोंमेंसे किसी आसन अथवा जिस प्रकारसे रुचि हो उस प्रकारसे वैठे क्योंकि मुख्य प्रयोजन यह है कि जिसमें सुखपूर्वक शरीर व आत्मा स्थिर हो वही आसन है ॥ ४६ ॥

प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ॥ ४७ ॥

प्रयत्नकी शिथिलता व अनन्तमें चित्त लगाने (एकाग्र करने) से आसनजित् होताहै ॥ ४७ ॥

शरीरका कांपना चित्तका एकाग्र [स्थिर] न रहना अनेक विषयोंमें दौडना यह साधारण शरीरका प्रयत्न व चित्तकी अवस्था है यह शरीरका साधारण चलायमान होना है उसको साधनकी दृढतासे शिथिल करना कि जिससे निश्चल होय शरीरमें कंप न हो व अनन्त जो परमेश्वर है उसमें समापत्तिसे अर्थात् अति चित्तको लगानेसे जिससे विषय वासनामें दौडकर एक स्थान व आसन साधनसे उच्चाट न हो आसन सिद्ध होता है प्रयत्नकी शिथिलता व अनन्तमें समापत्ति (एकाग्र चित्त करना) यह दो आसनजित् होनेके उपाय हैं ॥ ४७ ॥

ततो द्वन्द्वाभिघातः ॥ ४८ ॥

उससे (आसनजित् होनेसे) द्वन्द्वोंसे बाधा नहीं होती ४८

जब योगी आसनजित् होता है अर्थात् आसनमें दृढता प्राप्त करलेता है तब उसको द्वन्द्वोंसे अर्थात् शीत उष्णता आदिसे शरीरमें बाधा नहीं होती बाधा न होनेसे ध्यान वा समाधिमें विक्षेप नहीं होता ॥ ४८ ॥

तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ॥ ४९ ॥

उसमें (आसनमें) स्थित होकर श्वास व प्रश्वासोंकी गतिका रोकना प्राणायाम है ॥ ४९ ॥

जो वायु वाहिरसे भीतरको आता है उसको श्वास व जो भीतरसे वाहिरको जाता है उसको प्रश्वास कहते हैं दोनोंके आने जानेको रोकना प्राणायाम है. वाहिरके वायुको भीतर भरनेको पूरक व भीतरके वायुको वाहिर निकालने वा छोडनेको रेचक व रोक रखनेको कुंभक कहते हैं श्वाससे बाहिरके वायुको भीतर खैंचकर थाँभना श्वास प्रश्वासका रोकना अथवा भीतरके वायुको वाहिर निकालकर श्वास प्रश्वासका रोकना प्राणायाम है ॥ ४९ ॥

बाह्याभ्यन्तरस्तंभवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ॥ ५० ॥

बाह्य आभ्यन्तर स्तंभ वृत्तियाँ हैं जिसकी ऐसा प्राणायाम देश काल संख्याओंसे दीर्घ व सूक्ष्म विदित होताहै ॥ ५० ॥

प्रश्वासपूर्वक वायुकी गतिका अभाव होना अर्थात् रुकना बाह्यवृत्ति व श्वासपूर्वक वायुकी गतिका अभाव आभ्यन्तर वृत्ति और दोनोंका अभाव स्तंभवृत्ति यह तीन हैं वृत्तियां जिसकी ऐसा जो प्राणायाम

वह देश काल संख्याओंसे दीर्घसे सूक्ष्म होना विदित होता है इस सूत्रमें पूर्व सूत्रसे प्राणायामशब्दकी अनुवृत्ति आती है अर्थात् पूर्व सूत्रके सम्ब-न्धसे इसमें प्राणायाम शब्दका ग्रहण होता है वाह्य आभ्यंतर व स्तंभ वृत्ति तथा दीर्घ सूक्ष्म यह प्राणायामके विशेषण हैं देश काल व संख्या-ओंसे दीर्घका सूक्ष्म विदित होना यह है कि रेचकका वाह्य देश विषय है व पूरक कुम्भकोंका अन्तर देश विषय है इससे देश शब्दसे बाहिर व भीतर-से वायुके भरने व निकालनेके देशोंका ग्रहण होता है कालसे क्षणोंसे लेकर घटी पहर दिन आदि परिमाणसे प्राणायाममें कालकी अधिकता होते जानेसे अभिप्राय है अर्थात् प्रथम कुछ क्षणोंतक प्राणायाम करना फिर अधिक समर्थ होनेसे उससे देरतक करना इसीतरह दिन पक्ष मास आदि तक अभ्यास वढाना प्रणवके छत्तीस संख्यातक प्रश्वासपूर्वक प्रथम स्तंभ-न करना फिर मन्द मन्द श्वास लेना अथवा वारह संख्यातक श्वास भरना व वत्तीसतक स्तंभन करना व बीसतक प्रश्वास निकालना फिर अधिक वढा कर सोलह संख्यातक अर्थात् सोलह वार प्रणव (ॐ शब्द) के उच्चारतक श्वासको धीरे धीरे खींचकर भरना व चौसठतक स्तंभ करना व वत्तीसतक धीरे धीरे प्रश्वाससे बाहर निकालना फिर जैसा अभ्याससे सा-मर्थ्य वढता जाय अधिक करना इन देश काल संख्याओंके परिमाणसे प्राणा-याम साधनमें वायुके रोकनेकी शक्तिकी अधिकता होती जातीहै अभ्याससे रोकनेकी शक्ति अधिक होनेके अनुसार प्राणवायु दीर्घसे सूक्ष्म रूप होता जाता है अर्थात् जैसे तपे हुए पत्थरमें जो जलका बिन्दु (अर्थात् वूंद)पडता है वह चारोंतरफसे संकुचित होता व सूखता जाता है व संकुचित होते हुए सूक्ष्म होता जाता है इसीतरह अभ्यास किये जानेसे अधिक वहनेवाला अधिक देश व कालसे व्यापित होनेसे दीर्घ वायु रुककर शरीरही मात्रामें सूक्ष्म होकर रहजाता है यह प्राणवायुका दीर्घ रूपसे सूक्ष्म होना है संख्यामें कोई तीन वार हाथसे जानुके छूनेके कालको मात्रा संज्ञा मानकर मात्राओंकी संख्या प्राणायाम साधनमें कहते हैं परन्तु प्रणवके उच्चारणको

मात्रा मानना व प्रणवके उच्चारणकी संख्यासे प्राणायामका विधान उक्त जानकर प्रणवकी संख्याको प्राणायामकी संख्या विधानमें वर्णन कियाहै ॥

बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः ॥ ५१ ॥

बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी चौथा प्राणायाम है अर्थात् बाह्य विषय व आभ्यन्तर विषयमें आक्षेप पूर्वक (अवरोपण पूर्वक) जो वायुकी गतिका अवरोध (रोकना) है वह चौथा प्राणायाम है ॥ ५१ ॥

देश, काल, व संख्याओंसे बाह्य विषय और आभ्यन्तर विषयमें वायुके आक्षेप (आरोपण) हैं इन दोनों आक्षेपपूर्वक क्रमसे वायुकी गतिके रोकनेकी बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी नामक चौथा प्राणायाम कहे हैं अब इसमें यह संदेह होता है कि स्तंभ वृत्ति जो तीसरा प्राणायाम कहा है वह भी वायुकी गतिका रोकना ही है इससे तीसरेसे विशेष चौथा नहीं है जो पृथक् माना जाय इसका उत्तर यह है कि, क्रम रहित एक ही बार रोकनेको तीसरा प्राणायाम कहा है और बाह्याभ्यन्तर विषयाक्षेपी वह है कि, क्रमसे प्रणव वा मात्राकी संख्या सहित बाह्य देशमें वायुको निकाले व इसी तरहसे क्रमसे अभ्यन्तर (भीतर) देशमें वायु भरै इस प्रकारसे क्रमसे प्रथम रेचक व पूरक करके वायुको बाहर भीतर जितना रोक सकै रोंके. फिर अभ्याससे रोकनेमें समर्थ होकर बाहर व भीतर जाने व आनेकी गतिको रोककर जबतक स्तंभन करसके स्तंभन करै इस विशेषतासे तीसरेसे भिन्न है अर्थात् इसमें देश काल संख्याओंके क्रमका आलोचन है तीसरेमें क्रमका आलोचन [ख्याल नहीं है एकही बार रोक देनेका विधान है चारों प्राणायामोंका संक्षिप्त स्पष्ट वर्णन इस तरह समझाना चाहिये कि, जब भीतरसे बाहरको प्रश्वास निकलै तब उसको बाहरही रोक देवे यह प्रथम प्राणायाम है जब बाहरसे भीतरको श्वास आवै तब उसको जितना रोक सकै उतना भीतरही रो

देवे यह दूसरा है तीसरा स्तंभ वृत्ति वह है कि न वायुको बाहर निकाले न बाहरसे भीतरको ले जाय जितनी देरतक रोक सकै ज्यों का त्यों रोक देय. चौथा वह है कि थोडा थोडा क्रमसे वायुको बाहर निकाल कर रोकै. इसी प्रकारसे क्रमसे भीतरको ले जायकर रोकै फिर बाहर व भीतरकी गतिको क्रम व यत्नसे रोक करके स्तंभन करै ये चार प्रकारके प्रणायाम हैं ॥ ५१ ॥

अब प्राणायामका फल वर्णन करते हैं—

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ॥ ५२ ॥

उससे प्रकाश (ज्ञान) का आवरण क्षीण होता है ॥ ५२ ॥

उससे अर्थात् प्राणायामके अभ्याससे प्रकाश जो विवेकज ज्ञान है उसका आवरण अर्थात् छिपानेवाला मोह वा अज्ञान जो मायाजाल रूप अधर्म कर्म व संसार बंधनका हेतु है वह क्षीण होता है प्राणायाम परमतप है कि जिससे पाप मल दूर होता है व ज्ञानदीप्तिका प्रकाश होता है ॥ ५२ ॥

स्वविषयाऽसंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ॥ ५३ ॥

विषयोंसे चित्तके अपने निवृत्त होनेमें चित्त स्वरूपके अनुकारके समान इन्द्रियोंका होना प्रत्याहार है ॥ ५३ ॥

विषयोंसे चित्तके अपने निवृत्त होनेमें अर्थात् राग द्वेष मोह होने योग्य शब्दआदि विषयोंमें जो साधारण चित्त प्रवृत्त रहता है साधन विशेषसे इन शब्दआदि विषयोंसे उसके निवृत्त होने व एक ध्येय पदार्थमें स्थिर होनेमें उसी चित्त स्वरूपके अनुसार (समान आकार) अर्थात् तसवीर या छायाके समान इन्द्रियोंकाभी विषयोंसे निवृत्त होकर एकाग्र होना प्रत्याहार है. अभिप्राय यह है कि, जैसे मक्षिका मधुकरराजके चलनेमें चलती व स्थिर होनेमें स्थिर होती है इसी प्रकारसे इन्द्रि-

योंका सर्वथा चित्तके आधीन हो जाना चित्तके रोकनेसे उनका रु जाना उनके रोकनेके लिये अन्य उपायकी आवश्यकता न होना प्रत्याहार है ॥ ५३ ॥

प्रत्याहारका फल वर्णन करते हैं-

ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ॥ ५४ ॥

उससे इन्द्रियोंकी परम वश्यता (अत्यन्त वश होना) होती है ॥ ५४ ॥

उससे अर्थात् प्रत्याहारसे यह फल होता है कि, इन्द्रियोंकी अत्य आधीनता होजाती है इन्द्रियोंके आधीन होजानेसे योगी जितेन्द्रि होकर जहाँ अपने चित्तको ठहराना चाहै वहां ठहरा व जिससे निवृ किया चाहै उससे निवृत्त कर सकता है. अब संदेह यह है कि अपरम वश्यता (जो परम वश्यता न हो) क्या है कि जिसकी अपेक्षा परम वश्यता कहा है क्योंकि विना अपरम परम व वि न्यून अधिक विना छोटेका बडा इत्यादिका व्यवहार नहीं हो सक्ता उ यह है कि, शब्द आदि विषयोंका धर्म विरुद्ध सेवन न करना अर्था रूपमें मोहित होने व असत्य निरर्थक वार्ता सुननेसे तुच्छ विषयोंमें अ चित्तस्पर्श भोगकी इच्छा होनेमें विचार करके मन व इन्द्रियोंको व रखना अधर्माचरण न करना अपरम [न्यून] वश्यता है इसकी अपे प्रत्याहारका फलरूप सर्वथा इन्द्रियोंका चित्तके अधीन होना परम वश्य कहना युक्त है ॥ ५४ ॥

इति श्रीपातञ्जले योगशास्त्रे भाषाभाष्ये श्रीमत्प्यारे लालात्मजबाँदाम-ण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीप्रभुदयालुनिर्मिते साधननिदर्शनं नाम द्वितीयः पादः ॥ २ ॥

अथ विभूतिपाद प्रारंभः ।

देशबन्धाश्चित्तस्य धारणा ॥ १ ॥

चित्तको किसी देशमें बांधना धारणाहै ॥ १ ॥

नाभिचक्रमें या हृदयकमलमें या मस्तकमें या नासिकाके या जिह्वाके अग्रभागमें चित्तको चंचलतासे रोककर बांधना अर्थात् स्थिर करना व ओंकारका जप करना व उसके अर्थसे ईश्वरका विचार करना धारणा है अर्थात् शरीरके किसी अवयव या बाह्य विषयमें चित्तको वृत्तिसे बांधना कि एकाग्र होकर उस देशमात्रमें रहै इधर उधर अन्यत्र न जाय इसको धारणा कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ॥ २ ॥

उसमें (धारणामें) प्रत्यय (बुद्धि वा चित्त) की एकाग्रता अर्थात् ध्येय पदार्थही मात्रम चित्तका मग्न रहना अन्य विषयमें न जाना ध्यान है ॥ २ ॥

धारणाके पश्चात् ध्यान होता है इससे यह कहा है कि उसमें अर्थात् धारणामें जिस देश विशेषमें चित्त लगाया गया है उसी ध्येयमें [जिस का ध्यान करताहै उसमें] प्रत्यय [बुद्धि] का एकाग्र होजाना ध्येयसें भिन्न अन्य विषयमें न जाना ध्यान है ॥ २ ॥

अब सब अंगोंका फलरूप जो समाधि है उसका वर्णन किया जाता है-

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ॥ ३ ॥

स्वरूप शून्य होनेके समान उसीका अर्थात् ध्यानहीका अर्थ मात्र (ध्येयाकार) भासित होना समाधि है ॥ ३ ॥

ध्यानही जब अर्थमात्र रूपसे अर्थात् ध्येयके आकारसे भाषित होता है ध्यान करनेसे ऐसा प्रत्यक्ष होता है यह भेद बुद्धि नहीं रहती ध्यानका स्वरूप शून्यके समान विदित होता है तब समाधि कहा जाता है अर्थात् जब ध्येय (इष्ट स्वरूप) के प्रेम व ध्यानमें अति मग्न होनेसे ध्यान करनेका अथवा ध्येयसे ध्याताको अपने भिन्न होनेका ज्ञान न रहै अर्थात् यह ज्ञान न हो कि, मैं किसीका ध्यान करताहूं इससे ध्यानमें ऐसा देखताहूं यही बोध हो कि यही साक्षात् स्वरूप है ऐसा विदित होना समाधि है ध्यान और समाधिमें इतनाही भेद है कि ध्यानमें ध्यान करनेवालेको अपना व जिसका ध्यान करता है और ध्यान करनेका तीनोंका ज्ञान रहता है समाधिमें तीनोंके भेदका अभाव होजाता है केवल ध्येयही मात्र भासित होता है ॥ ३ ॥

त्रयमेकत्र संयमः ॥ ४ ॥

एकमें तीनोंका होना संयम है ॥ ४ ॥

एकही विषयमें धारणा ध्यान समाधि तीनोंके होनेको संयम कहते हैं गौरव त्यागके लिये व एकही नामसे तीनोंका बोध होनेके लिये तीनोंका एक नाम संयम योगशास्त्रमें माना है. क्योंकि इन तीनोंके सिद्ध होनेसे अनेक प्रकारकी सिद्धियोंका आगे वर्णन है । प्रत्येकमें बारंबार तीन नामोंके लिखनेमें शब्दोंके अधिक लिखनेकी आवश्यकता होनेसे गौरवकी प्राप्ति होती और उससे कुछ फल नहीं होता है ॥ ४ ॥

तज्जयात्प्रज्ञालोकः ॥ ५ ॥

उसके जयसे समाधिप्रज्ञाका प्रकाश होता है ॥ ५ ॥

उसके जयसे अर्थात् संयमके जीतनेसे समाधि प्रज्ञा (समाधिकी बुद्धि वा समाधिज्ञान) का निर्मल प्रकाश होता जैसे जैसे संयम स्थिर अर्थात् दृढ होता जाता है उसी क्रमसे समाधि प्रज्ञा निर्मल प्रकाशित होती जाती है ॥ ५ ॥

तस्य भूमिषु विनियोगः ॥ ६ ॥

उसका (संयमका) भूमियोंमें बिनियोग (सम्बन्ध) है ॥६॥

संयमका भूमियोंमें विनियोग है स्थूल व सूक्ष्म पदार्थोंमें क्रमसे संप्रज्ञात योगकी जो चार अवस्था सवितर्का निर्वितर्का सविचारा और निर्विचारा नामसे कही गई हैं वही भूमि हैं क्रमसे प्रथम स्थूल भूमियोंको संयमसे जीतकर फिर उनके अनन्तर सूक्ष्म भूमियोंके जीतनेकी इच्छा करै और प्रयत्नसे जीतै प्रथम विना स्थूलके साक्षात् किये सूक्ष्मके साक्षात् करनेको समर्थ नहीं होसक्ता यह अभिप्राय है ॥ ६ ॥

त्रयमन्तरंगं पूर्वेभ्यः ॥ ७ ॥

पूर्ववालोंसे यह तीन अन्तरंग हैं ॥ ७ ॥

पूर्व पादमें वर्णन कियेगये जो यम आदि पांच हैं उनकी अपेक्षा धारणा ध्यान समाधि यह तीन सम्प्रज्ञात समाधिके अन्तरंग हैं और यम आदि पांच वहिरंग हैं बहिरंग कहनेसे अभिप्राय यह है कि बाहरके अथवा दूरके अंग हैं व यह तीनों समान विषय (एकही विषयवाले) होनेसे अन्तरके वा विशेष निकटके अंग हैं इससे अन्तरंग हैं ॥ ७ ॥

तदपि बहिरंगं निर्बीजस्य ॥ ८ ॥

वह भी निर्बीजके अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधिके बहिरङ्गहैं८

सवीज जो सम्प्रज्ञात समाधि है उसके यमआदि पांच बहिरंग हैं और धारणाआदि तीन अन्तरङ्ग हैं यह पूर्व सूत्रमें कहा है यह तीन जो सम्प्रज्ञातके अन्तरंग हैं यह भी निर्बीज समाधिके अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधिके बहिरंग हैं क्योंकि सब वृत्तियोंके निरोध व परवैराग्यरूप असम्प्रज्ञातमें विना समय समाधि रहती है धारणाआदिकी अपेक्षा नहीं होती इससे असम्प्रज्ञातमें धारणादि भी बहिरंग हैं ॥ ८ ॥

व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः॥ ९ ॥

व्युत्थान व निरोध संस्कारोंका क्षय व उदय होता है निरोध क्षणमें जो चित्तका अन्वय(योग) है वह निरोधका परिणाम है ॥ ९ ॥

चित्तकी वृत्तियां जब विषयोंमें प्रवृत्त व चंचल रहती हैं वह व्युत्था अवस्थान है असम्प्रज्ञातकी अपेक्षा सम्प्रज्ञात समाधि भी (उसमें चित्तवृ त्तियोंका सर्वथा लय नहीं होता इससे) व्युत्थान है उसका जब पर वैराग्य होनेसे निरोध होता है वह निरोध असम्प्रज्ञात है निरोध समाधिमें (अस म्प्रज्ञात समाधिमें) व्युत्थान संस्कारका क्षय (नाश) व निरोध संस्कार का उदय होता है उस निरोध क्षणमें जो चित्तका सब वृत्तियोंके रुक जानेके साथ अन्वय (योग) है वह निरोध परिणाम है। अब यह संदे होसक्ता है कि व्युत्थान संस्कारके क्षय होनेहीसे निरोध संस्कारका उद होजायगा निरोध संस्कारके पृथक् कहनेकी आवश्यकता नहीं है इसक उत्तर यह है कि यह संदेह भ्रम रूप है व्युत्थान व निरोध पृथक् पदा हैं क्योंकि विषय व उसके भोगकी वृत्ति निवृत्त होजानेपरभी बहुतका पीछे उसका स्मरण व उसके भोगकी इच्छा होती है इससे निरोध संस्का रका उदय रहना जिससे प्रवृत्तिरूप व्युत्थानका रोक बना रहै आवश्य व पृथक् पदार्थ व उपासनीय है ॥ ९ ॥

तस्य प्रशांतवाहिता संस्कारात् ॥ १० ॥

उसकी प्रशांतवाहिता अवस्था अर्थात् सदा शांत बने रहनेकी अवस्था संस्कारसे होती है ॥ १० ॥

उसकी अर्थात् चित्तकी शांत रहनेकी अवस्था निरोध संस्कारसे होती है निरोध संस्कारके प्रबल व दृढ़ होनेसे व व्युत्थान संस्कारके सर्वथा क्ष

होनेसे निरोध संस्कारके सदा स्थिर रहनेसे चित्त परम शांत दशामें रहता है ॥ १० ॥

सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ॥ ११ ॥

सर्वार्थता व एकाग्रताका क्षय व उदय होना चित्तका समाधिपरिणाम है ॥ ११ ॥

असम्प्रज्ञात समाधिमें चित्तके परिणाम अवस्थाको वर्णन करनेके अनन्तर सम्प्रज्ञात समाधिमें चित्तकी परिणाम अवस्थाको इस सूत्रमें वर्णन किया है कि चित्तकी सर्वार्थताका अर्थात् चित्तका जो नाना प्रकारके सब अर्थोंमें गमन है उसका क्षय होना व एकाग्रताका उदय होना अर्थात् केवल ध्येय विषयमें चित्तका स्थिर होना चित्तका समाधि (सम्प्रज्ञात समाधि) परिणाम है ॥ ११ ॥

ततः पुनः शांतोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रता परिणामः ॥ १२ ॥

उससे (समाधिसे) फिर शांत व उदित प्रत्ययोंका एक समान होना चित्तकी एकाग्रताका परिणाम है ॥ १२ ॥

शांत प्रत्यय (बुद्धि वृत्ति वा ज्ञान) अर्थात् जो प्रत्यय होगया और उदित जो होगयेके पश्चात् उसीके समान अन्य उदय हुवा इन दोनों प्रत्ययोंका चित्तमें समाधिके अंत होने वा भ्रष्ट होने तक विनाक्रम बोध होनेके एकही समान विदित होना वा रहना चित्तकी एकाग्रताका परिणाम है अर्थात् चित्तके एकाग्र होनेका फल है ॥ १२ ॥

एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ॥ १३ ॥

इसीके समान भूत व इन्द्रियोंमें धर्मलक्षण व अवस्था

परिणामोंको व्याख्यात (व्याख्यान कियेगये) समझना चाहिये ॥ १३ ॥

जैसे चित्त परिणाम वर्णन किया गया है इसी प्रकारसे भूत जो पृथिवी जल तेज वायु आकाश हैं और इन्द्रियोंमें धर्म लक्षण व अवस्था परिणामोंका होना जानना चाहिये धर्मीमें जो पदार्थ आश्रित रहता है अथवा जिसके होनेकी धर्मी [द्रव्य] में शक्ति या योग्यता है उसको धर्म कहते हैं। और धर्मके बदलनेको अर्थात् स्थित द्रव्यके पूर्वधर्मके निवृत्त होनेपर अन्यधर्म उत्पन्न होनेको परिणाम कहते हैं। जैसे मिट्टीके पिण्डरूप धर्मके नाश होनेपर घटरूप धर्म उत्पन्न होता है इसी प्रकारसे चित्तके व्युत्थान धर्मके नाश होनेपर निरोध धर्म प्रकट होता है यह धर्म परिणाम है। और यह कार्य रूप है काल भेद होनेको लक्षणपरिणाम कहते हैं लक्षण परिणाममें अनागत अध्वा, वर्तमान अध्वा और अतीत अध्वा यह तीन भेद होते हैं। अध्वा शब्दका अर्थ यहाँ कालका है अनागत अध्वासे भविष्यत्काल व वर्तमानसे वर्तमान और अतीतसे भूतकाल जानना चाहिये। धर्मका प्रथम न प्राप्त होना अनागत अध्वा है। धर्मका वर्तमान होना वर्तमान अध्वा है। वर्तमान होकर निवृत्त होना अतीत अध्वा है। यह लक्षणपरिणाम है अनागत लक्षण वर्तमान व अतीत धर्मोंसे भिन्न होना विदित होता है। तथा वर्तमान अनागत व अतीतसे और अतीत अनागत व वर्तमानसे इसी प्रकारसे व्युत्थानमें निरोधका अनागत अध्वा है। निरोधके वर्तमानमें व्युत्थानका अतीत अध्वा और व्युत्थान तथा निरोधके वर्तमानमें वर्तमान अध्वाका होना लक्षण परिणाम है वर्तमान और अतीत कालके सम्बन्धसे व रूप भेदसे घट आदिके नये पुराने होनेका ज्ञान अवस्था परिणाम है अथवा निरोध लक्षणमें निरोध संस्कार बलवान् व व्युत्थान संस्कार दुर्बल होते हैं यह बलवान् व निर्बल होना अवस्था परिणाम है धर्मीका धर्मोंसे [धर्मद्वारा] धर्मोंका लक्षणसे लक्षणका अवस्थासे परिणाम होता है। इस प्रकारसे धर्म धर्मी भेदसे धर्म लक्षण अवस्था रूप तीन तरहका परिणाम होता है तीनों कालमें धर्मी स्वरूपमात्र एक

रहता है धर्मीमें जो वतमान धर्म है उसीका अतीत व अनागतमें अन्यथा भाव होता है धर्मी [द्रव्य] का नहीं होता। जैसे सुवर्णका कोई आभूषण तोडकर अन्य प्रकारका आभूषण बनानेसे दूसरे तरहका आकार होता है वं दूसरा नाम कहा जाता है परंतु सुवर्ण द्रव्यका अन्य भाव नहीं होता। कोई यह शंका करते हैं कि यह कहना कि धर्मीमें अन्यथा भाव नहीं होता धर्ममें होता है यह यथार्थ नहीं है क्योंकि धर्मोंसे भिन्न धर्मी वा द्रव्य कुछ नहीं है आकार रूप आदि धर्म व अवस्था भेदसे जो पदार्थ होता है वही कोई नाम विशेषसे कहा जाता है धर्मी नामसे नहीं कहा जाता। यथा सुवर्णमें जो जो रूप आकार आदि प्रत्यक्षसे विदित होते हैं सब धर्म हैं इन धर्मोंके परिणामसे जो अन्य आभूषण वा भाजन बनता है वह नाम विशेषसे कहा जाता है सुवर्ण नामसे नहीं कहा जाता और रूप आकार आदि धर्मोंसे भिन्न धर्मीका रहना सिद्ध नहीं होता इससे पूर्वापर अवस्था धर्म भेदसे धर्मोंके स्वरूपमें भेद हो जानेसे अनेक पदार्थ होते हैं धर्मोंके समूह व अवस्था विशेषसे पृथक् [भिन्न] धर्मी कुछ नहीं मानना चाहिये इसका उत्तर यह है कि यह शंका युक्त नहीं है क्योंकि ऐसा मानना इस हेतुसे ऐकान्तिक अर्थात् दोषरहित सर्वथा यथार्थ नहीं होसक्ता कि जो विना धर्मीके धर्म मात्रही माना जावे तो धर्मोंके परिणाम होनेसे व्यक्तिरूप कार्य विशेष होते हैं। और कार्यरूप व परिणामी (बदलनेवाले) धर्म सब अनित्य विदित होते हैं इससे तीनों लोकोंका नाश व असत् होना मानना होगा जो यह कहा जाय कि असत् वं अनित्यही मानेंगे क्या दोष है तो अनित्यता माननेमें भी ऐकान्तिक न होनेका दोष है अर्थात् सर्वथा विनाश व अभावको भी नहीं मानसक्ते क्यों कि जो असत् है उससे कोई कार्य वा पदार्थ अथवा क्रियाका होना संभव नहीं है विना सत्कारणके कुछ कार्य नहीं होसक्ता जगत्में ऐसे पदार्थ जो प्रत्यक्षके विषय हैं व क्रियाका होना विदित होता है इससे इन कार्य पदार्थोंका कारण द्रव्य वा धर्मी जो धर्मोंके परिणाम होने [बदलने] परभी धर्मोंका आश्रय रूप बना रहता है सत् व मानने योग्य है [प्रश्न] जो

धर्मीका नाश नहीं होता तो घटको चूर्ण कर डालने व पीस डालने व उसके अणु वायुमें उडजाने तथा अग्निमें जल जानेपर धर्मी कुछ नहीं रहता और जो रहता है तो उसका प्रत्यक्ष होना चाहिये सो नहीं होता [उत्तर] नाश होनेपरभी धर्मी रहता है सूक्ष्म होनेके कारणसे चाहे प्रत्यक्ष नहीं परंतु धर्मीका नाश नहीं होता यह अनुमानसे सिद्ध होताहै । केवल धर्मोंका परिणाम होता है वर्तमान धर्मोंका अतीत [नष्ट] होजाना जैसा ऊपर सुवर्ण भाजन व कुण्डल आदि आभूषण बनने में कहा गया है लक्षणपरिणाम है वर्त्तमान धर्मोंके न रहने परभी धर्मी अन्य धर्मोंसहित बना रहता है [प्रश्न] जब धर्म अतीत लक्षण सहित होता है तब वर्तमान अनागत संयुक्त नहीं होता जब अनागत संयुक्त होताहै तब अतीत व वर्त्तमान संयुक्त नहीं होता जब वर्त्तमान संयुक्त होताहै तब अतीत अनागत संयुक्त नहीं होता धर्ममें तीनों लक्षणोंका योग होनेसे तीनोंको एक संगभी होना चाहिये और जो नहीं होते तो तीनोंका मानना यथार्थ नहीं है [उत्तर] धर्ममें तीनकाल सम्बंधी तीन लक्षणका होना यथार्थ है वर्तमानहीसे अतीत अनागत कालका होना धर्ममें सिद्ध होता है क्योंकि असत्की उत्पत्ति व सत्का नाश नहीं होता धर्मीमें धर्मके सत् होनेपर लक्षण भेदभी कहने योग्य हैं वर्त्तमान समयमें अतीत व अनागतका होना आवश्यक नहीं है जैसे राग क्रोध यह चित्तके धर्म हैं परन्तु रागकालमें क्रोध व क्रोधकालमें राग विद्यमान नहीं होता इसीतरह तीनों लक्षणोंका एक कालमें होना संभव नहीं है क्रमसे होते हैं यह धर्मके तीन अध्वा [त्रिकाल सम्बन्ध] है धर्मीके नहीं हैं धर्म तीन अध्वाओंसे लक्षित व अलक्षित अवस्थामें प्राप्त होकर द्रव्य भेद रहित अवस्था भेद मात्रसे अन्य अन्य भावसे देख पडते हैं जैसे एकही स्त्री माता कन्यां भगिनी भावसे स्थान व अवस्था भेदसे कही जाती है जो यह संशय हो कि धर्मीको नित्य मानना और उसके नाश होनेमें अवस्था परिणाम मानना युक्त नहीं है. उत्तर यह है धर्मीके नित्य होनेपरभी धर्मोंके प्रकट व अप्रकट होनेकी विचित्रतासे धर्मीका उत्पन्न होना व नाश होना कहा जाता व माना जाता है ॥ १३ ॥

शान्तोदितोऽव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ॥ १४ ॥

जो शांत, उदित और अव्यपदेश्य धर्मोंमें अर्थात् भूत वर्तमान और भविष्यत् धर्मोंमें अन्वयी है अर्थात् सामान्य विशेष रूपसे रहनेवाला सबधर्मोंका सम्बन्धी है वह धर्मी है ॥ १४ ॥

जो भूत वर्तमान और भविष्यत् धर्मोंमें सामान्य व विशेषरूपसे अन्वयी है अर्थात् जिसका सम्बन्ध किसीकालवाले धर्मोंसे भिन्न नहीं होता ऐसा धर्मोंका संवन्धी है वह धर्मी है (प्रश्न) जो धर्मी न माना जावे तो क्या हानि है (उत्तर) जो धर्मीको न मानै अन्वय (धर्मीका संवन्ध) रहित धर्ममात्रही माने जावे तो भोगका अभाव होना चाहिये क्योंकि धर्मोंके परिणाम होनेपर औरके ज्ञानसे कियेहुए कर्मोंके फल भोग करनेका और दूसरा अधिकारी नहीं होसक्ता तथा स्मृतिका अभाव होजाना चाहिये अर्थात् जो धर्म अतीत (व्यतीत) होगए उनके समयमें जो जाना गया उसका ज्ञान अव वर्तमान धर्मोंमें न होना चाहिये क्योंकि औरके देखे या जानेहुएका स्मरण औरको नहीं होता. पूर्व देखे या जाने हुए

---

१ शांत शब्दका अर्थ व्यापारसे निवृत्त होजानेका है जो होजाता है वही भूत कहा जाता है इससे शांत शब्दका अर्थ भूत व उदित शब्दका अर्थ उदयको प्राप्त है इसके अर्थसे वर्तमानकाल होनेका वोध होता है इससे उदित शब्दका अर्थ वर्तमान साधारणसे विदित होता है परन्तु अव्यपदेश्य शब्द जो भविष्यत् अर्थ वाचक सूत्रमें कहा है उसके अर्थके साथ भविष्यत् कालका सम्बन्ध ज्ञात न होनेसे संदेह होता है क्योंकि अव्यपदेश्य उसको कहते हैं जो कहने योग्य न हो इसका समाधान यह है कि पृथिवी आदि धर्मियोंमें विशेष रूप आकार आदि उनके धर्म जो वर्तमानमें प्रकट नहीं हैं परन्तु उनसे प्रकट होनेके योग्य हैं वहभी शक्तिरूपसे उनमें स्थित हैं क्योंकि जो न हों तो वायुसे घट न वन सकनेके समान कभी उनसे वह प्रकट न होसके परन्तु जवतक नहीं होते तवतक वे कहने योग्य नहीं होते इससे होनेवाले (भविष्यत्) धर्मोंको अव्यपदेश्य नामसे कहा है ।

वस्तुके स्मरणसे यह विदित होता है कि धर्मोंके अन्यथा होजानेपरभी जो स्मरण करता है वह अन्वयी धर्मी है अन्वय रहित धर्मही मात्र नहीं है यह धर्मधर्मीभेद चेतनमें तथा जड पदार्थमें दोनोंमें विचारने व निश्चय करने योग्य है ॥ १४ ॥

क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ॥ १५ ॥

क्रमका अन्य होना परिणामके अन्य होनेमें हेतु (कारण) है ॥ १५ ॥

यह संशय निवारणके लिये कि एक धर्मीमें एकही परिणाम होना चाहिये बहुत परिणामोंके होनेमें क्या कारण है ? सूत्रमें यह वर्णन किया है कि क्रमका अन्य होना परिणामके अन्य होनेका हेतु है अर्थात् क्रमका और और होते जाना परिणामके और और होने अर्थात् बहुत परिणामोंके होनेका कारण है जैसे मिट्टीका पिण्ड मिट्टीके कपाल मिट्टीके कण आदि एकही मिट्टीके क्रमभेद होनेपर पिण्ड घट आदि बहुत परिणाम होजाते हैं पूर्व अपर अवस्थाओंमें होनेको समनन्तर कहते हैं जो जिसके धर्मका समनन्तर है वह उसका क्रम कहा जाता है यथा-पिण्डसे घटका होना यह धर्म परिणामका क्रम है, घटके अनागत भावसे [भविष्यत् भावसे] वर्तमान भाव क्रम है और पिण्डके वर्तमान भावसे अतीत भाव क्रम है यह लक्षण परिणामके क्रम है अतीत भूतका क्रम नहीं होता क्योंकि उसमें पूर्व भाव नहीं है उससे पूर्व होनेका अभाव है घटका नयेसे पुराना होना अवस्था परिणामका क्रम है यह धर्म लक्षणविशिष्ट तीसरा परिणाम है, चित्तके परिणाम दो प्रकारके हैं एक परिदृष्ट अर्थात् प्रत्यक्ष जैसे काम सुख आदि; दूसरे अपरिदृष्ट अर्थात् अप्रत्यक्ष या परोक्ष जो आगम प्रमाण व अनुमानसे जाने जाते हैं, अपरिदृष्ट परिणाम सात तरहका होता हैं, एक निरोध अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि अवस्था जिसमें सब वृत्तियोंका निरोध होता है दूसरा कर्म [पुण्य व पाप] जिसका सुख दुःख भोग होनेसे अनुमानद्वारा और

शास्त्रसे प्रमाण होता है. तीसरा संस्कार जिसका स्मृतिसे अनुमान होता है. चौथा परिणाम जो चित्तके चंचल व त्रिगुण रूप होनेसे प्रतिक्षणमें अनुमान किया जाता है. पांचवें जीवन जो श्वास व प्रश्वास प्राणधारणसें अनुमान किया जाता है. छठवां चेष्टा क्रिया सातवां शक्ति जो कार्योंकी सूक्ष्म अवस्थारूप चित्तका धर्म है व स्थूल कार्योंसे उसके कारणरूप होनेका अनुमान होता है ॥ १५ ॥

अब संयमके फलको वर्णन करते हैं–

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ॥ १६ ॥

तीन परिणामोंके संयमसे अतीत व अनागत (भूत व भविष्यत्) का ज्ञान होता है ॥ १६ ॥

धारणा ध्यान समाधि तीनोंके होनेको संयम कहते हैं इस संयम साधनसे धर्म लक्षण अवस्था तीन परिणामोंको साक्षात् करनेसे रजोगुण व तमोगुण मल दूर होजाने व सत्त्वगुणका प्रकाश उदय होनेसे भूत व भविष्यत्का ज्ञान होता है ॥ १६ ॥

शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्सङ्करस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ॥ १७ ॥

शब्द अर्थ व प्रत्ययों (बोध) के परस्परका अध्यास रूप (स्मरण स्वभाववाला) संकेतसे जो परस्परका अतियोग (मेल) है उसके अतिविभाग (भेद) के संयमसे सब प्राणिओंके शब्दका ज्ञान होता है ॥ १७ ॥

शब्द अर्थ व ज्ञानके परस्परका स्मरण स्वभाव या हेतुरूप एक संकेत विशेष शब्द व अर्थोंके साथ हैं जिससे कि शब्दविशेषके सुननेसे उसके अर्थविशेषका स्मरण व ज्ञान होता है और इन तीनोंमें ऐसा मेल वा योग

है कि इनका परस्पर पृथक् होना विदित नहीं होता यथा गौ शब्द गौ अर्थ और यह गौ है इस ज्ञान होनेमें तीनके पृथक् होनेका बोध नहीं होता ऐसे इन तीनोंके योगके विभागको इस प्रकारसे योगी संयम करे कि शब्दका अर्थके साथ केवल माने हुए संकेतका कि इस अर्थ विशेष (पदार्थ) का यह नाम है सम्बंध है और कुछ योग नहीं है क्योंकि शब्द आकाशका गुण (धर्म) व श्रोत्र इन्द्रियका विषय है व मुख द्वारा उर, कण्ठ, शिर, जिह्वामूल, दन्त, नाक, ओंठ और तालु इन आठ स्थानोंसे ध्वनि परिणामसे बने हुए अक्षरोंका उच्चार होता है और कई अक्षरोंसे मिला हुवा एक पद वा नाम होता है उस पदके उच्चारण करनेमें पूर्व पूर्वके अक्षर उत्तरवाले अक्षरके उच्चारण करते नाश होते जाते हैं ऐसे अक्षरोंसे अर्थके साथ योग नहीं होसक्ता न अर्थके वाचक हैं तथा अक्षरोंके मेलसे बना हुवा पद भी अंतवर्ण (अक्षर) के उच्चार समाप्त होतेही नष्ट होजानेसे अर्थ वाचक नहीं है न उसका आपसे कुछ योग होना अंगीकार होसक्ता है इससे शब्द अर्थसे भिन्न है गौ शब्द सुननेसे जो गौ अर्थका ज्ञान होता है वह शब्द व अर्थ दोनोंसे भिन्न है क्योंकि जो गौ शब्द व गौ शब्दवाच्य अर्थका संकेत नहीं जानता उसको गौ शब्दसे गौका ज्ञान नहीं होता इससे शब्दसे भिन्न है और जो जानता है कि यह गौ है उसके नाश होनेपरभी उसके स्वरूपको स्मरणसे जानता है इससे अर्थसे भिन्न है इस प्रकारसे विभाग तथा शब्द अर्थ व ज्ञानके लक्षण व कर्ता क्रिया कारक नाम आख्यातोंके विभागमें संयम करनेसे संयमी योगी पशु पक्षी आदि सब प्राणियोंके शब्दको जानता है कि यह इस अर्थको कहते हैं कर्ता क्रिया कारक नाम आख्यातके भेद वर्णन करने से कुछ लाभ न समझकर संक्षेपसेही वर्णन किया है क्योंकि यह व्याकरणका विषय है और व्याकरण जाननेवालोंके समझने योग्य व उन्हींको उपयोगी होसक्ता है भाषा जाननेवालोंको उससे कुछ फल नहीं होता॥ १७॥

संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वजातिज्ञानम् ॥१८॥

संस्कारोंके साक्षात् करनेसे पूर्वजन्मका ज्ञान होता है ॥ १८ ॥

दो प्रकारके संस्कार एक वासनारूप ज्ञानसे उत्पन्न स्मृतिके हेतु तथा अविद्या संस्कार अविद्या आदि पूर्वोक्त (पहिले कहे हुए) क्लेशोंके हेतु दूसरे धर्म अधर्मरूप जन्म आयु और भोगके हेतु पूर्व जन्मोंमें हुए निरोध शक्ति व जीवन धर्मवाले चित्तके धर्म हैं यह संस्कार जो अप्रत्यक्ष है वेद प्रमाण और अनुमानसे जाने जाते हैं इनमें संयम करनेसे संस्कार साक्षात् करनेको योगी समर्थ होता है और विना देशकाल निमित्त रूपोंके अनुभव इनका साक्षात्कार नहीं होता इससे देश काल अनुभव सहित संयमसे संस्कारोंके साक्षात् करनेसे पूर्व जन्मका ज्ञान होताहै इसी प्रकार-से परके संस्कार साक्षात् करनेसे संयमी (योगी) की परके पूर्वजन्मका ज्ञान होता है. यहां संस्कार साक्षात् करनेमें जैगीषव्य ऋषिका आख्यान (इतिहास) जाननेको योग्य है उसको वर्णन करते हैं—महात्मा जैगीषव्य ऋषिको संस्कार साक्षात् करनेसे दशकल्पमें जो देवता मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें उनके जन्म हुएथे उन सबका ज्ञान दिव्य विवेकज ज्ञानसे उदय हुवा उनसे आटव्य ऋषिने पूंछा कि हे भगवन्! नाना प्रकार-के जन्म जो देव मनुष्य तिर्यक् योनियोंमें आप दशकल्पमें धारण किया और गर्भसे उत्पन्न होनेका दुःख भोग करते देव आदि योनियोंमें स्तुत व दुःख भोग किया है इनमेंसे सुख या दुःख क्या अधिक प्राप्त हुवा और सुख किस योनिमें है? जैगीषव्यने कहा कि जितनी योनियोंमें मैं बारंबार उत्पन्न हुवा उनमें नरक तिर्यक् योनिमें तो दुःख अधिकही है परन्तु ऐसा किसी योनि देवता आदिमें नहीं हुवा जिसमें दुःख न प्राप्त हुवा हो सब योनियोंमें दुःख है. आटव्यने कहा कि, प्रकृति वश करनेसे जो सिद्धियां प्राप्त होती हैं जिससे संकल्प वा इच्छा मात्रहीसे दिव्य भोग प्राप्त होते हैं वह भी दुःखहै जैगीषव्यने कहा कि लौकिक सुखकी अपेक्षा प्रकृति वश कर-

नेसे सिद्धियोंके प्राप्त होनेसे जो सुख होता है वह अतिसुख है परन्तु मोक्ष-की अपेक्षा वहभी दुःख है क्योंकि दुःख रूप जो तृष्णा तंतु है वह नहीं टूटता तृष्णातन्तुके टूटनेसे अर्थात् सर्वथा तृष्णाके निवृत्त हो जानेसे मुक्त पुरुष प्रसन्न अति उत्तम सुखको प्राप्त होता है अर्थात् केवल मोक्षही सुखरूप है ॥ १८ ॥

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ॥ १९ ॥

प्रत्यय (चित्तकी वृत्ति) के संयमसे परके चित्तका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

प्रत्ययके संयमसे प्रत्यय साक्षात् करनेसे परके चित्तका ज्ञान होता है; परन्तु चित्तकी वृत्ति मात्रका ज्ञान प्रत्ययके संयमसे होता है चित्तके आल-म्बनका ज्ञान नहीं होता अर्थात् चित्त रागको प्राप्त है इत्यादि चित्तकी वृत्तियां मात्रका ज्ञान होता है प्रत्यय मात्रके संयमसे यह विदित नहीं हो-सक्ता कि चित्त किस विषयमें स्थित है क्योंकि विषयका संयम नहीं किया गया वृत्तिमात्रके संयमसे पर चित्तकी वृत्तियोंका ज्ञान होता है ॥ १९ ॥

न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्॥२०॥

योगीके दूसरेके मनका सामान्य ज्ञान होना ॥ २० ॥

योगी यदि यह जानना चाहै कि अमुक मनुष्यका मन कैसी अवस्थामें है, तो इतना मात्र जान सकता है कि किसी आधारमें लगाहुआ है; परन्तु यह नहीं जानसक्ता कि अमुक विषयमें आसक्त है । क्योंकि दूसरेके ज्ञानका आलम्बन योगीके चित्तका आश्रय नहीं है केवल दूसरेका सामान्य ज्ञानमात्र आलम्बन है ॥ २० ॥

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तंभे चक्षुप्रका-शासंप्रयोगेन्तर्द्धानम् ॥ २१ ॥

शरीररूपमें संयमसे उसकी ग्राह्यशक्तिके रोकनेपर नेत्रके

प्रकाशका विषय न होनेसे अर्थात् नेत्रके प्रकाशका योगीके शरीरके साथ योग न होनेसे अंतर्द्धान होताहै॥२१॥

शरीरके रूपमें संयमसे उसकी ग्राह्य शक्ति जो अन्यके नेत्रोंसे देखा-जाता है उसके रोकनेपर नेत्रके प्रकाशका विषय न होनेसे योगीको अन्त-र्द्धानकी शक्ति प्राप्त होती है इसी प्रकारसे शब्द स्पर्श रस गंधोंमें संयम करनेसे और उनकी ग्राह्य शक्तियोंके रोकनेसे कर्ण जिह्वा त्वचा नासिका इन्द्रियोंके ज्ञानका शब्द आदिकोंके साथ योग न होनेसे शब्द आदिका अंतर्द्धान होता है अर्थात् योगीको रोकनेसे दूसरेके शब्द आदिका ज्ञान नहीं होता ॥ २१ ॥

सोपक्रमं निरुपक्रमञ्च कर्म तत्संयमादपरां-तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ॥ २२ ॥

सोपक्रम व निरुपक्रम भेदसे दो प्रकारका जो कर्म है उसके संयमसे अथवा अरिष्टोंसे मरनेका ज्ञान होता है ॥ २२ ॥

कर्म दो प्रकारके होते हैं एक वह जिनका फल जल्द होता है जैसे भी-गाहुवा कपडा घाममें फैलाया हुवा जल्द सूखता है उनको सोपक्रम कहते हैं दूसरे जिनका फल बहुत काल पीछे होता है जैसे लपेटा हुवा भीगा कपडा छायामें देरसे सूखता है उनको निरुपक्रम कहते हैं इन क-र्मोंके संयमसे मरनेका ज्ञान होता है सूत्रमें जो एक वचन कहा है कि कर्मके संयमसे मरनेका ज्ञान होता है उसका अभिप्राय यह है कि दोनों प्रकारके अनेक कर्म जो जन्मसे लेकर मरनेतक होते हैं उन सब कर्मोंका समुदाय रूप एक सामान्य कर्म जिसको पूर्वमें (पहिले) एकभवि-क नामसे जन्म और आयुका कारण होना वर्णन कियाहै उन सब कर्मोंके समुदायरूप एक भविकको यह कहा है कि उसके संयमसे मर-नेका ज्ञान होता है और अरिष्टोंसे भी मरनेका ज्ञान होता है अरिष्टोंसे

मरनेका ज्ञान अयोगियोंको सब मनुष्योंको होता है और होसक्ता है अरिष्ट तीन प्रकारके होते हैं एक आध्यात्मिक जैसे कानोंके छिद्र अंगुलीसे बंद करनेसे जो प्राण वायुका शब्द सुन पडता है उसका न सुनना दूसरे आदिभौतिक यमदूतोंका अथवा मरेहुए पितरोंका अकस्मात् देखना तीसरे आधिदैविक अकस्मात् स्वर्ग वा सिद्धोंका देखना इत्यादि अरिष्टोंसे मरनेका ज्ञान होता है ॥ २२ ॥

मैत्र्यादिषु बलानि ॥ २३ ॥

मित्रता आदिमें बल होतेहैं ॥ २३ ॥

मैत्री, करुणा, व मुदिता इनमें संयम करनेसे मित्रता आदि बल योगीको प्राप्त होते हैं. प्राणियोंमें सुहृद् भावना करनेसे मित्रता बल दुःखित प्राणियोंमें करुणा (दया) भाव करनेसे करुणा बल धर्मवान् पुरुषोंमें आनन्दभाव रखनेसे मुदिता (आनन्द होना) बल योगियोंको प्राप्त होता है चित्तकी भावनासे समाधि होती है अधर्मीमें योगीके चित्तकी उदासीनता रहती है इससे संयम न होनेसे कुछ बल नहीं होता ॥ २३ ॥

बलेषु हस्तिबलादीनि ॥ २४ ॥

बलोंमें (बलोंमें संयम करनेसे) हाथीके बल आदि होते हैं ॥ २४ ॥

बलोंमें संयम करनेसे हाथी आदिके बल योगीमें प्राप्त होते हैं अर्थात् हाथीके बलमें संयम करनेसे हाथीका बल, गरुडके बलमें संयम करनेसे गरुडका बल, वायुके बलमें संयम करनेसे वायुका बल होता है इत्यादि ॥ २४ ॥

प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्टज्ञानम् ॥ २५ ॥

प्रवृत्तिके प्रकाशको प्रेरणा करनेसे सूक्ष्म व्यवहित (जो किसीके आडमेंहै) और दूरका ज्ञानका होताहै ॥ २५ ॥

ज्योतिष्मती प्रवृत्ति जो पहिले वर्णन की गई है उसका प्रकाश उसकी ज्योति है उसको योगी संयमसे जीतकर सूक्ष्ममें या जो वस्तु किसीके व्यवधान (आड) से छिपी है उसमें या दूर देशमें प्रेरणा करनेसे सूक्ष्म आदिकोंको जानता है. सूक्ष्म जैसे परमाणु आदि व्यवहित जैसे पृथिवीमें गडा हुआ धन आदि दूर जैसे मेरु आदि पर्वतमें रसायन हैं उनको जानताहै ॥ २५ ॥

भुवनज्ञानं सूर्य्ये संयमात् ॥ २६ ॥

सूर्य्यमें संयम करनेसे भुवनका ज्ञान होता है ॥ २६ ॥

सुषुम्णा नाडी द्वारा अपने हृदय व आकाशमें एकरूप तेजोमय अपने तेज व किरणोंसे भूलोक भुवर्लोक व स्वर्लोक और सब भुवनोंका प्रकाश करनेवाला जो सूर्य है उसके संयमसे योगीको सब भुवनोंका ज्ञान होता है सब भुवन साक्षात्कार होते हैं. भुवन कौन कौन हैं और उनका क्या व्याख्यान है इसके वर्णन करनेका सूत्रके अर्थके साथ कुछ प्रयोजनविशेष नहीं है भुवनोंके वर्णनमें बहुत विस्तार होता; यहांतक कि एक अन्य ग्रंथकी रचना होजाना संभव था इससे नहीं लिखा; सब भुवनोंका ज्ञान सूर्य्यमें संयम करनेसे होता है यह सूत्रका मुख्य अर्थ लिखा गया है भुवनोंका व्याख्यान श्रीव्यासजीकृतभाष्य वा अन्य ग्रन्थोंसे जानना चाहिये ॥ २६ ॥

चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ॥ २७ ॥

चन्द्रमें (चन्द्रमें संयम करनेसे) ताराव्यूह (तारोंकी रचना) का ज्ञान होताहै ॥ २७ ॥

चन्द्रमामें संयम करनेसे तारामण्डल वा तारोंकी रचनाका ज्ञान होता है. यहां यह सन्देह होता है कि जब सूर्य संयमसे सब भुवनोंका ज्ञान होता है तो तारा व्यूहका भी हो जायगा; भिन्न चन्द्र संयम वर्णन करनेसे

क्या प्रयोजनथा ? उत्तर यह है कि सूर्य्यके प्रकाशमें तारागणोंका प्रकाश मलिन होनेसे विदित नहीं होता इससे सूर्य्यमें संयम करनेसे ताराव्यूहका ज्ञान नहीं होता, चन्द्रसंयमसे होता है ॥ २७ ॥

ध्रुवे तद्गतिज्ञानम् ॥ २८ ॥

ध्रुवमें संयम करनेसे उनकी गतिका ज्ञान होता है ॥ २८॥

ध्रुवमें संयम साधन करनेसे उनकी अर्थात् उक्त तारागणोंकी गतिका ज्ञान होता है ॥ २८ ॥

नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ॥ २९ ॥

नाभिचक्रमें संयम साधनसे कायव्यूह(शरीरकी रचना) का ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

नाभिचक्रमें संयम साधन करनेसे शरीरकी रचना जो वात पित्त कफ त्वचा लोहू मांस अस्थि (हड्डी) मज्जा (चरवी) वीर्य आदि धातुओंसे संयुक्त है उसका ज्ञान होता है ॥ २९ ॥

कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ॥ ३० ॥

कण्ठकूपमें संयमसे भूँख पियासकी निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥

जिह्वाके नीचे तन्तु व तन्तुके नीचे कण्ठ व कण्ठके नीचे कूप है उसमें संयम सिद्ध होनेसे भूँख व पियासकी निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥

कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ॥ ३१ ॥

कूर्मनाडीमें संयम करनेसे स्थिरता होती है ॥ ३१ ॥

कूपके नीचे हृदयमें कूर्म नाडी अर्थात् कछुआके आकार(रूप) नाडी है उसमें संयम साधनसे स्थिरता प्राप्त होती है ॥ ३१ ॥

मूर्द्धज्योतिषि सिद्धदर्शनम् ॥ ३२ ॥

मूर्द्ध ज्योतिमें सिद्धोंका दर्शन होता है ॥ ३२ ॥

शिर कपालके अन्तर (भीतर) छिद्र है वह प्रकाशमान ज्योतिरूप है उसको मूर्द्धज्योति कहते हैं उसको सुषुम्णा नाडी भी कहते हैं उसमें संयम करनेसे पृथिवी और आकाशमें जो सिद्ध विचरते हैं व दृष्टिमें नहीं आते वे प्रत्यक्ष होते हैं अर्थात् योगीको उनका दर्शन होता है ॥ ३२ ॥

प्रातिभाद्वा सर्वम् ॥ ३३ ॥

अथवा प्रातिभसे सब ज्ञान होता है ॥ ३३ ॥

विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न ज्ञान) संसारसे तारनेवाला है इससे उसकी तारक संज्ञा [नाम] है और उसीको प्रातिभ भी कहते हैं वह प्रातिभ अर्थात् विवेकज ज्ञानके पूर्वरूपमें ऐसा प्रकाश होता है जैसे सूर्य मण्डलके उदय होनेमें अंधकार निवृत्त होनेसे प्रकाश होता है ऐसे प्रातिभ ज्ञानके उत्पन्न होनेसे भी संयमी सम्पूर्ण पदार्थको जानता है, अथवा शब्दसे यह अभिप्राय है कि पूर्वमें बहुत प्रकारके संयम नाना प्रकारके ज्ञान उदय होनेके लिये कहे हैं, इससे यह कहा है कि पूर्व कहे हुए अनेक संयमोंसे जो अनेक पदार्थोंका ज्ञान होता है वह इस प्रातिभ ज्ञानके उदयसे भी होता है ॥ ३३ ॥

हृदये चित्तसंवित् ॥ ३४ ॥

हृदयमें चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३४ ॥

हृदयशब्दसे हृदयमें जो कमल है वह अधोमुख है उसको ग्रहण करना चाहिये उसके विज्ञानमें संयम करनेसे संयम सिद्ध होनेमें चित्तका ज्ञान होता है ॥ ३४ ॥

सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थत्वात्स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ॥ ३५ ॥

अत्यंत भिन्न बुद्धि व आत्माका भेद रहित एक बोध होना भोगहै। यह भोग परके लिये (निमित्त) होनेसे स्वार्थ (अपने) में संयम करनेसे आत्माका ज्ञान होता है ॥ ३५ ॥

बुद्धि भोग्य (भोग करने योग्य) व आत्मा भोक्ता [भोग करनेवाला] होनेसे दोनों अति भिन्न हैं इन दोनोंका विशेष [भेद]- बोध न होना अर्थात् एकही बोध होना भोग है और यह भोगपर [अन्य] जो दृश्यरूप बुद्धि है उसके लिये हैं अर्थात् दुःख सुखका भोग बुद्धिको होता हैं आत्मा अज्ञानसे अपनेको दुःखी सुखी और मूढ मानता है ऐसा माननाही भोग है ऐसा न मानकर सुखदुःख परके निमित्त अर्थात् बुद्धिके निमित्त होनेसे अपने लिये न जानकर अपनेको जो ज्ञान स्वभाव बुद्धिसे भिन्न जानना है उसमें संयम साधन करनेसे आत्मज्ञान होता है अर्थात् आत्मस्वरूप साक्षात् होता है ॥ ३५ ॥

ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ॥ ३६ ॥

उससे (आत्मज्ञानसे) प्रातिभ श्रावणवेदन (स्पर्श) आदर्श (रूप) आस्वाद वार्ता (गंध) उत्पन्न होतेहैं ॥ ३६ ॥

आत्मज्ञान होना जो विवेकसे उत्पन्न ज्ञान है उससे पूर्वोक्त [पहिले वर्णन किया हुवा] प्रातिभज्ञान अर्थात् ज्ञानका परम प्रकाश होता है

---

१ सत्त्वका अर्थ बुद्धि व पुरुषका अर्थ आत्मा जानना चाहिये।

प्रातिभके होनेसे प्रातिभश्रावण [दिव्य श्रावण] अर्थात् दूर देशमें हुये शब्दका श्रावण प्रातिभवेदन अर्थात् जो परोक्ष दूर देशमें या अति सूक्ष्म पदार्थ है उसके स्पर्शको जानना. इसी प्रकारसे प्रातिभ आदर्शसे दिव्यरूप आस्वादसे दिव्यरस वार्तासे दिव्य गंध ज्ञान होनेसे प्रयोजन है अर्थात् आत्मज्ञान होनेसे सूक्ष्म व्यवहित [किसीके अन्तर वा आडमें प्राप्त दूर देशमें विद्यमान भूत और भविष्यत् शब्द स्पर्श रूप रस व गंधोंका ज्ञान नित्य योगीको होता है ॥ ३६ ॥

ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ॥३७॥

वह समाधिमें विघ्न व व्युत्थान अवस्थामें सिद्धियां होते हैं ॥ ३७ ॥

प्रातिभ ज्ञानसे जो दिव्यश्रवण आदि होते हैं उनके प्राप्त होनेसे कृतार्थ होना न समझना चाहिये क्योंकि वह दिव्यश्रवण आदि समाधि अवस्थामें जिससे मोक्ष प्राप्त होनेका प्रयोजन है सब विघ्न व व्युत्थान अवस्थामें सिद्धियां समझे जाते व कहे जाते हैं ॥ ३७ ॥

बंधकारणशैथिल्यात्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ॥ ३८ ॥

बंध कारण शिथिल होनेसे व प्रचार संवेदनसे चित्तका परशरीरमें प्रवेश होता है ॥ ३८ ॥

सब जगह प्राप्त होनेवाला व रहनेवाला चित्त है उसका एक शरीर मात्रमें स्थित रहना बंध है और इस बंधके कारण धर्म अधर्म कर्म हैं इनकी शिथिलता समाधिबलसे होती है इन बंधके कारणोंके शिथिल होनेसे और प्रचार संवेदनसे अर्थात् प्रचार जो चित्तके गमन आगमनकी नाडी हैं उसके यथार्थ ज्ञान होनेसे योगी चित्तको अपने शरीरसे निकालकर दूसरेके शरीरमें प्रविष्ट कर देता है. चित्तके प्रवेश करनेमें चित्तके साथही सब इन्द्रियांभी दूसरेके शरीरमें प्रवेश करती हैं ॥ ३८ ॥

उदानजयाज्जलपंककंटकादिष्वसंग उत्क्रान्तिश्च ॥ ३९ ॥

उदानके जीतनेसे जल कीच काँटा आदिमें असंग (मेल रहित) और इच्छामरण (अपनी इच्छा अनुसार मरनेवाला) होता है ॥ ३९ ॥

शरीरमें पांच वायु हैं-प्राण,अपान,समान,उदान और व्यान. इन सबमें प्राण मुख्यहै. उसका स्थान हृदय है अर्थात् प्राण वायु हृदयमें रहता है. इसीतरह अपानका स्थान गुदा, समानका स्थान नाभि, उदानका कण्ठ व व्यानका सब शरीर है अर्थात् व्यान सब शरीरमें रहता है. उदानको संयमसे जीतनेसे योगी जल कीच कांटा आदिके ऊपर चलता है और जल कांटा आदि योगीये शरीरमें नहीं छूजाते और अपनी इच्छासे योगी अपने शरीरको त्याग करता है ॥ ३९ ॥

समानजयाज्ज्वलनम् ॥ ४० ॥

समानके जीतनेसे ज्वलन [तेज] होता है ॥ ४० ॥

समान वायुके जीतने(वश करने)से अग्निके समान तेजवान् होताहै॥४०॥

श्रोत्राकाशयोः सम्बंधसंयमाद्दिव्यश्रोत्रम् ॥४१॥

श्रोत्र [कान] व आकाश दोनोंके सम्बंधमें संयम करनेसे दिव्य श्रोत्र होता है ॥ ४१ ॥

शब्द आकाशका गुण है और श्रोत्र इन्द्रिय उसका कारण है अर्थात श्रोत्र इन्द्रियसे शब्द सुनाजाता है शब्द और श्रोत्रका आधार आकाश है इससे श्रोत्र इन्द्रिय और आकाशका सम्बन्धहै; इन दोनोंके सम्बन्धसे संयम करनेसे योगीका दिव्य श्रोत्र होता है अर्थात् श्रोत्र इन्द्रिय दिव्य होता है.

दिव्य होनेसे योगी निकट व दूर सब स्थानोंके शब्दोंको सुनता है. पहिले स्वार्थ-में संयमसे दिव्य श्रोत्र आदिका होना वर्णन किया है. यहाँ श्रोत्र इन्द्रिय व उसका सम्बंधी आकाश भूतके साथ जो सम्बंध है उसके संयमसे दिव्य श्रोत्र होना कहा है. इसी प्रकारसे एक एक इन्द्रिय व उसके कार्य भूतके संयमसे एक एक इन्द्रियके दिव्य होनेकी सिद्धि प्राप्त होना समझना चाहिये अर्थात् त्वक् (चमडा) व वायु नेत्र व तेज रसना [जिह्वा] व जल नासिका व गंधोंके सम्बंधमें संयम करनेसे दिव्यत्वचा आदि इन्द्रियोंका होना समझना चाहिये ॥ ४१ ॥

कायाकाशयोस्सम्बंधसंयमाल्लघुतूलसमापत्ते-श्चाकाशगमनम् ॥ ४२ ॥

शरीर व आकाशके सम्बंधमें संयमसे और लघुतूल आदिमें समाधि होनेसे आकाशका गमन होताहै ॥ ४२ ॥

शरीर व आकाशके सम्बंधमें संयम सिद्ध करके लघुतूल (रुई) आदि से लेकर परमाणुतकमें समाधि सिद्ध करनेसे सम्बंधके वश करनेसे योगी लघु वा हलका होता है. लघु होनेसे हलकापनसे प्रथम पदसे जलमें चलता है फिर सूर्य्यकी किरणोंमें विहार करता है इसके पश्चात् इच्छा पूर्वक आकाशमें उडता है ॥ ४२ ॥

बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशा-वरणक्षयः ॥ ४३ ॥

अकल्पिता महा विदेह जो बाहरकी वृत्ति है उससे प्रकाशके आवरणका क्षय (नाश) होताहै ॥ ४३ ॥

शरीरसे बाहर मनकी वृत्तिके लाभ करनेको विदेह धारणा कहते हैं जो इस कल्पनासे बाहर देशमें धारणा की जाती है कि शरीरमें स्थित मन वृत्ति मात्रसे बाहर हो जाता है व बाहर प्रवृत्त होता है उसको कल्पिता

विदेहा कहते हैं और जो विना शरीरकी अपेक्षा मन वाहरही है उसीकी वृत्ति बाहर होती है, ऐसी धारण की जाती है, उसको अकल्पिता महाविदेहा कहते हैं, कल्पिताको प्रथम सिद्ध करके कल्पिताके द्वारा योगी अकल्पिता महाविदेहाको साधन करता है, अकल्पिता महा विदेहाको सिद्ध होनेसे योगी परके शरीरमें प्रवेश करता है और उससे प्रकाश जो चित्तका स्वभाव है उसके आवरण (रोक) जो क्लेश व कर्म फल है उनका क्षय होता है अविद्या आदि क्लेशोंके क्षय होनेसे आवरण रहित योगीका चित्त इच्छा अनुसार विहार करता है ॥ ४३ ॥

स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद्भूतजयः ॥ ४४ ॥

स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय व अर्थवत्त्वोंमें संयम करनेसे भूतोंको जीतता है अर्थात् सब भूत योगीके वश होजाते हैं ॥ ४४ ॥

पृथिवी आदि भूतोंके स्थूल, स्वरूप, सूक्ष्म, अन्वय और अर्थवत्त्व यह पांच प्रकारके रूप भेद होते हैं. स्थूल आदिकोंका निदर्शन यह है कि पार्थिव (पृथिवीवाले) गंध रस रूप स्पर्श शब्द या पांच हैं आप्य (जलवाले) गंध छोडकर रसआदि चार तैजस (तेजवाले) गंध व रस छोडकर रूप आदि तीन वायवीय (वायु वाले) गंधरस व रूप छोडकर दो आकाशीय (आकाशवाला) गंध आदि चार छोडकर शब्द मात्र होनेसे पार्थिव आदि शब्द आदि एक एकका अधिक व न्यून सम्बन्ध होनेसे एक दूसरेसे विशेष (भेदयुक्त) हैं शब्द आदिकोंके साथ रहनेवाले जो और पार्थिव आदि धर्म हैं उनका विभाग यह है आकार गरू होना, रूक्ष होना, रंग स्थिर होना, कठिनता, सबसे भोग्य होना यह पार्थिव धर्म है. स्नेह (चिकनाई) सूक्ष्मता, प्रकाश, शुक्लता (सफेदी), वहना, गरू होना, शीत होना रक्षा पवित्रता मिलाना यह आप्य (जलके वा जलवाले) के

धर्म हैं. ऊपरका जाना पचाना, जलाना (भस्म करना), प्रकाश, करना, हलका होना पतला व पवित्र करना यह तैजस (तेजवाले) हैं. चलन। पवित्रता, फेंकना, प्रेरणा¹, बल रूक्ष होना यह वायवी (वायु) के हैं. सर्व गति होना (सब जगह प्राप्त होना या रहना) रचना व आकार रहित होना, रोक न होना, यह आकाशीय (आकाशके) धर्म हैं इन धर्मोंके भेदसे पृथिवी आदि एक दूसरे विलक्षण व भिन्न हैं. आकार आदिभी सामान्य व विशेषरूपसे होते हैं; यथा—गौ घट आकार आदि होना यह पार्थिव शब्द आदि और आकार आदि स्थूल शब्द (नाम) से कहे जाते हैं यह स्थूल भूतोंका प्रथम रूप है; सामान्यरूपसे पृथिवीका मूर्तिरूप जलका स्नेहरूप तेजका उष्ण (गरम होना) वायुका वहनशील [वहनेवाला] और आकाशका सर्वगत होना स्वरूपशब्दसे कहा जाता है. यह स्वरूप पृथिवी आदि भूतोंका दूसरा रूप है इस सामान्यके शब्द आदि विशेषरूपसे होते हैं शब्द आदिकोंके विशेष रूप होनेका वर्णन प्रथम लिख दिया गया है द्रव्यका स्वरूप सामान्य व विशेषका समुदाय और समूहमें विशेषरूप होता है यथा—शरीर, वृक्ष, यूथ, वन आदि समूहके दो भेद हैं. एक जो अनेक पृथक् २ व्यक्तियोंसे युक्त समूह रूप एक माना जाता है यथा अनेक वृक्षोंसे युत वन व अनेक ब्राह्मण आदिसे युत एक ब्राह्मण आदिकोंका यूथ (जमात) कहा जाता है इसको युत सिद्धावयव कहते हैं. दूसरा जो पृथिवी आदि अवयवोंका संघात (मेल) रूप विना अन्य व्यक्तिके योग एक एकका ज्ञान होता है जैसे शरीर वृक्ष आदि इसको अयुत सिद्धावयव कहते हैं यह स्वरूपका भेद वर्णन किया गया भूतोंके कारण रूप (सूक्ष्मरूप) परमाणु और उनमें प्राप्त शब्द स्पर्श रूप रस गंध सूक्ष्म शब्दसे कहे जाते हैं यह भूतोंका तीसरा रूप है. सत्त्व रज तम इन तीनों गुणोंको जिनका कार्यरूप होनेका स्वभाव है अन्वय कहते हैं यह चौथा रूप है सत्त्व गुण आदि व उनके कार्योंका भोग व अपवर्गके

---

१ तृण आदिको प्रेरण करके वायु चलता है अर्थात् उडाता है स्थानान्तरको ले जाता है और शरीरको चलाता है इससे वायुमें प्रेरणा धर्म है ।

निमित्त होना अर्थवत्त्व है यह पांचवाँ रूप है. इन भूतोंके पांच कार्य स्वरूप स्थूल आदिमें क्रमसे संयम करनेसे योगी भूतोंके स्वरूपको यथार्थ रूपसे जानता है और भूतोंको जीत लेता है जैसे वत्सके पीछे गाय स्नेहवश जाती है इसी प्रकारसे योगीके संकल्प अनुसार पृथिवी आदि भूतोंके कार्य होते हैं ॥ ४४ ॥

ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसम्पत्तद्धर्मानभिघातश्च ॥ ४५ ॥

उससे (भूतोंके जीतनेसे) अणिमादिकोंकी उत्पत्ति व कायसम्पत्तिकी प्राप्ति होती है और उनके धर्मोंसे अर्थात् भूतोंके धर्मोंसे बाधा भी नहीं होती ॥ ४५ ॥

स्थूल आदिके संयमसे भूतोंका जीतना जो वर्णन किया है उससे अणिमादि आठ सिद्धियां उत्पन्न होती हैं अर्थात् प्राप्त होती हैं स्थूलमें संयम करनेसे चार सिद्धियाँ होती हैं एक अणिमा अर्थात् वडे स्वरूपसे सूक्ष्म हो जाना दूसरी लघिमा अर्थात् बडा शरीर होने परभी अति हलका होकर आकाशमें उडना व विहार करना तीसरी महिमा अर्थात् बहुत भारी स्वरूप धारण करना चौथी प्राप्ति अर्थात् पृथिवीमें बैठे हुये अंगुलीके अग्रभागसे चन्द्रको स्पर्श करना आदि स्वरूपके संयमसे प्राकाम्यसिद्धिः होती है अर्थात् योगी जलमें प्रवेश करनेके समान अपनी इच्छासे भूमिके भीतर प्रवेश करता है सूक्ष्म विषयमें संयमजीतने [सिद्ध करने] से वशित्व होता है. अर्थात् पृथिवी आदि भूतोंमें और गौ वट आदि भौतिकोंमें स्वाधीन होता है अन्वयमें संयमजित् होनेसे ईशित्व होता है अर्थात् भौतिक [भूतोंसे उत्पन्न] पदार्थोंके उत्पन्न व उनके नाश व उनकी रचना करनेमें समर्थ होता है और अर्थवत्त्वमें संयम सिद्ध करनेसे यत्र कामावसायित्व सत्य संकल्पता सिद्धि होती है अर्थात् जो संकल्प करता है उसी प्रकारसे भूतकी प्रकृतियोंसे कार्य होते हैं परन्तु इससे यह न समझना चाहिये कि

ईश्वररचित सृष्टि कार्यके विरुद्ध कार्य योगी करसक्ता है अर्थात् सूर्यको चन्द्रमा कर देने आदिमें समर्थ होता है जो योग्य कार्य हैं उनको योगी अपने संकल्पसे करसक्ता है यह आठ सिद्धियां प्राप्त होती हैं कायसम्पत्तिको आगे सूत्रमें वर्णन किया है उससे यहाँ उसके व्याख्यानकी आवश्यकता नहीं है पृथिवी आदि भूतोंके धर्म जो मूर्त्तिमान् होनेसे रोक करना आदि हैं उनसे योगीको बाधा नहीं होती अर्थात् योगी शिलाके भीतर प्रवेश करता है शिला आदि उसके प्रवेश करनेमें रोक नहीं करसक्ते तथा जल भिगा नहीं सक्ता अग्नि भस्म नहीं करसक्ता वायु उडा नहीं सक्ता और आकाश यद्यपि किसीका आवरण [छिपानेवाला] नहीं होता तथापि योगी अति सूक्ष्म हो आकाशमें छिप जाता है देख नहीं पडता ॥ ४५ ॥

रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसम्पत् ४६॥

सब अङ्गोंकी सुन्दरता बल व वज्रके समान अंगोंकी रचना दृढ़ होना कायसम्पत्ति है ॥ ४६ ॥

अति सुन्दर होना बल होना वज्रके समान शरीरके अवयव व जोडोंका कठिन होना कायसम्पत् है यह उक्त [कहे हुए] स्थूल आदिमें संयम करनेसे भूतोंके जीतनेसे प्राप्त होता है ॥ ४६ ॥

ग्रहणस्वरूपाऽस्मिताऽन्वयार्थवत्त्वसंयमादि-न्द्रियजयः ॥ ४७ ॥

ग्रहण स्वरूप अस्मिता अन्वय व अर्थवत्त्वमें संयम करनेसे इन्द्रियोंसे जीत होती है अर्थात् इन्द्रियोंको जीतता है ॥ ४७ ॥

इन्द्रियोंके पांच प्रकारके रूप भेद हैं उनका विवरण यह है सामान्य व विशेष स्वरूपसे विद्यमान रहनेवाले शब्द स्पर्श रूप रस गंध ग्राह्य हैं इनमें श्रवण आदि इन्द्रियोंकी वृत्तियोंका होना ग्रहण है यह इन्द्रियोंका

एक रूप है ज्ञान है स्वभाव जिसका ऐसी बुद्धि है उसके सामान्य व विशेषोंके अयुत सिद्धावयव भेदको प्राप्त समूहरूप द्रव्य इन्द्रिय है यह इन्द्रियका स्वरूप इन्द्रियका दूसरा रूप है अस्मिता (अहंकार) सामान्य रूपके विशेष रूप इन्द्रिय है यह अस्मितारूप होना इन्द्रियों-का तीसरा रूप है अहंकार संयुक्त इन्द्रियाँ ज्ञानक्रिया और स्थिति स्वभाववाले जो सत्त्वगुण रजोगुण व तमोगुण हैं उनके परिणाम हैं यह इन्द्रियोंका अन्वय रूप चौथा रूप है गुणोंमें जो गुणोंके अनुसार पुरुषार्थका होना है यह अर्थवत्त्वसंज्ञक इन्द्रियोंका पांचवाँ रूप है इन पाचों इन्द्रियरूपोंमें क्रमसे संयम करनेसे एक एकको जीतकर पांचों रूपोंके जीतनेसे योगी इन्द्रियजित् होता है सब इन्द्रियाँ उसके अधीन होजाती हैं ॥ ४७ ॥

ततो मनोजवित्वविकरणभावः प्रधानजयश्च॥४८

उससे (इन्द्रिय जयसे) मनोजवित्व, विकरण भाव और प्रधानसे जय होता है अर्थात् योगी प्रधानको जीत-ता है ॥ ४८ ॥

इन्द्रियजयसे (इन्द्रियोंको जीतनेसे) मनोजवित्व अर्थात् शरीरकी अति उत्तम गति होना विकरणभाव अर्थात् विना देहसम्बंध दूर देशमें प्राप्त भूत व भविष्यत् कालमें हुए व होनेवाले और अतिसूक्ष्म विषयोंका जानना प्रधानजय अर्थात् सम्पूर्ण प्रकृतिके कार्योंका वश होना यह तीन सिद्धियाँ प्राप्त होतीहैं इन तीन सिद्धियोंको मधुप्रतीक कहते हैं ॥ ४८ ॥

सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधि-ष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वञ्च ॥ ४९ ॥

बुद्धि व पुरुषके भिन्न होनेका जिसको ज्ञान है केवल

---

१ अयुतसिद्धावयवका वर्णन पहिले ४२ सूत्रके भाष्यमें होचुका है इससे यहाँ नहीं लिखा गया उक्त सूत्रके भाष्यसे देखना चाहिये ।

उसीको सब भावों (पदार्थों) का अधिष्ठाता होना व सबका ज्ञाता होना सिद्ध होता है ॥ ४९ ॥

रजोगुण तमोगुण मल जिसके दूर होगये हैं और विवेकसे उत्पन्न ज्ञानसे बुद्धि व आत्माके भिन्न होनेका जिसको निश्चय होगया है और जो वशीकार संज्ञा वैराग्यमें वर्तमान है वही सब भावोंका अर्थात् प्रधान व सम्पूर्ण उसके परिणाम रूप पदार्थोंका अधिष्ठाता होता है और सब प्राणियों व पदार्थोंके अतीत अनागत और वर्तमान धर्मोंसहित स्थित गुणोंको जानता है इसको विशोषका सिद्धि कहते हैं इसको प्राप्त होकर योगी सब क्लेश व बंधनसे रहित हो पूर्णज्ञान होकर आनन्दसे विचरता है ॥ ४९ ॥

तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ५०

उसमें भी वैराग्य होनेसे दोष (क्लेश) बीजोंके नाश होनेपर कैवल्य मोक्ष होता है ॥ ५० ॥

उसमें अर्थात् विवेकख्याति रूप बुद्धिमें भी वैराग्य होनेसे दोषबीज जो राग द्वेष मोह कर्मफल संस्कारहैं उनके क्षय होनेसे चित्तमें पर वैराग्य होता है वैराग्य होनेसे पुरुषको मोक्ष प्राप्त होता है मोक्ष होनेमें पुरुष चेतन आनन्दस्वरूपमात्र रहता है यह जो विवेक वृत्तिरूप सत्त्व-गुणका कार्य बुद्धि है उसमें वैराग्य होना परवैराग्य व परवैराग्यसे मोक्ष होता वर्णन किया है इसका भाव यह है कि विवेक प्रत्यय अर्थात् विवेक वृत्ति वा विवेकरूप ज्ञान होनेसे विषयोंसे वैराग्य होता है जिस विवेक प्रत्ययसे विषयोंसे वैराग्य होता है वह सत्त्वरूप बुद्धिका धर्म है बुद्धि सत्त्वरूप प्रधानका कार्य है और त्यागने योग्य वर्णन कीगई है पुरुष परिणाम रहित शुद्धबुद्धिसे भिन्न है, इससे जिस विवेकबुद्धिसे विषयोंसे वैराग्य होता है उस विवेक प्रत्ययरूप बुद्धिमें भी वैराग्य होनेसे व गुणोंके वियोग होनेसे क्लेशके बीजोंका नाश होता है क्लेश बीजोंके नाश होनेसे

मुक्ति होती है मुक्ति होनेसे पुरुष फिर तीनों तापोंको भोग नहीं करता इसको संस्काराशेष सिद्धि कहते हैं ॥ ५० ॥

स्थान्युपनिमंत्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात् ॥ ५१ ॥

स्थानियों (देवताओं) के उपनिमंत्रणमें फिर अनिष्ट (क्लेश) प्राप्त होनेसे संग व स्मय न करना चाहिये ॥ ५१ ॥

योगमें जो विघ्न उत्पन्न होते हैं उनके निवारणके लिये यह उपदेश कियाहै कि स्थानियोंके उपनिमंत्रणमें संग व स्मय न करना चाहिये इसका व्याख्यान यह है कि योगी चार प्रकारके होते हैं प्रथम कल्पिक, मधुभूमिक, प्रज्ञाज्योति और अतिक्रान्तभावनीय प्रथम योगी संयममें प्रवृत्तमात्र परके सिद्ध आदिको नहीं जानता, दूसरा (मधुभूमिक) संप्रज्ञात योगसे ऋतंभरा प्रज्ञा अवस्थाको प्राप्त भूत व इन्द्रियोंको साक्षात् करके जीतनेकी इच्छा करता है, तीसरा (प्रज्ञाज्योति) भूत व इन्द्रियोंका जीतनेवाला है अर्थात् सम्पूर्ण जे भावना कियेगये हैं व जिनकी भावना करना योग्य है उनमें रक्षा बंध करके कृत (कियेगये) व कर्तव्य (करने योग्य) का साधन करनेवाला है चौथा (अतिक्रांतभावनीय) जीवन्मुक्त होता है जिसका केवल चित्तका लय होनाही प्रयोजन है इस अतिक्रान्तभावनीय योगीके प्रज्ञा (बुद्धि) की सात प्रकारकी प्रान्तभूमि होतीहै इनका व्याख्यान पूर्वही कियागया है इनमेंसे प्रथम योगी देवता आदिसे उपनिमंत्रण (प्रार्थना) किये जानेके योग्य नहीं होता दूसरा मधुभूमिक जब मधुमती भूमिको साक्षात् करता है और इन्द्रियोंके जीतनेकी इच्छा करता है तब उसके सत्त्व (बुद्धि) में शुद्धता होते देखकर स्थानी अर्थात् स्थानोंके देवता स्थानोंसे उपनिमंत्रण (आदर सत्कारके लिये बुलाना या प्रार्थना करना) करते हैं अर्थात् उत्तम उत्तम भोग दिखाकर योगीसे यह कहते हैं कि यहां स्थितहो यहां रमण करो क्या

अच्छा यह भोग है यह अति सुन्दर कन्या है क्या अच्छा रसायन है कि जिससे जरा मृत्यु नहीं होती कैसा आकाशमें चलनेवाला विमान है कैसे कल्पवृक्ष हैं उत्तम अप्सरा हैं दिव्यकर्ण नेत्र हैं यह वज्रके समान शरीर है यह अजर अमर देवताओंके स्थान हैं ऐसा जो स्थानियोंका उपनिमंत्रण है उसमें संग व स्मय न करना चाहिये संगके दोषोंको विचारकर ऐसी भावना करै कि मैं इस घोर संसारमें वारम्वार जन्म व मरण क्लेशरूप अन्धकारमें परिवर्तमान यत्न व साधनसे क्लेश अंधकारका नाश करनेवाला योगप्रदीप जो प्रकाशित किया है उसके यह तृष्णायोनि (तृष्णाके उत्पन्न करनेवाले) विषय शत्रु हैं मैं पूर्वही इस विषय तृष्णासे ठगागया अब ज्ञानप्रकाशको प्राप्त फिर किसतरह जरते हुए संसार अग्निमें अपने आत्माको ईंधनके समान जलाऊं जो विषयभोग स्वप्नके समान व तुच्छ कृपण जनोंसे इच्छा करने योग्य है उनसे बचारहना चाहिये, इसीमें कल्याण है इस प्रकारसे संग त्यागका निश्चय करके समाधिमें प्राप्तहोय और यह मेरे योगका प्रभाव है कि देवता मेरी प्रार्थना करतेहैं ऐसे अहंभाव अंधकार (अहंकार) को स्मय कहते हैं यह न करै यह योगभ्रष्ट होनेका कारण है योगभ्रष्ट होनेसे फिर अनिष्ट जो क्लेश आदि हैं उनका प्रसंग होता है अर्थात् फिर क्लेश आदि प्राप्त होते हैं इससे स्थानियोंके उपनिमन्त्रणमें संग व स्मय न करना चाहिये संग व स्मय न करनेसे दृढ होकर योगी समाधिको प्राप्त होताहै ॥ ५१ ॥

क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५२ ॥

क्षण और उनके क्रमोंमें संयमसे विवेकज (विवेकसे उत्पन्न) ज्ञान होता है ॥ ५२ ॥

नियत समय पाकर जो परमाणु चलता है व चलनेमें पूर्व देशको छोडता है वह उत्तरदेश [आगेकी जगह] को प्राप्त होता है यह क्षण है और इन क्षणोंका प्रवाह न रुकना क्रम है क्षणोंका और उनके क्रमोंका

समूह होना जो माना जाता है अथवा भासित होता है यह यथार्थ नहीं है क्योंकि क्षणोंका समूहरूप जो मुहूर्त रात्रि दिन है यह कालवस्तुसे शून्य है एक बुद्धिसे मान लेना मात्र है भ्रमसे लोकमें वस्तुस्वरूपके समान भासित होता है क्षणोंके पूर्वसे उत्तर होनेमें अर्थात् पहिलेसे आगे चलने वा होनेमें जो एक दूसरेसे अन्तर होता जाता है इसको क्रम कहते हैं परन्तु विचारसे क्षणोंका समूहमें क्रमका कोई वस्तु होना सिद्ध नहीं क्योंकि दो क्षण एक साथ नहीं होते दोनोंका साथ होना असंभव होनेसे क्रम नहीं हो सक्ता अर्थात् पूर्वके न रहनेमें वर्तमान होता है न रहेहुएका वर्तमानके साथ संयोग नहीं होसक्ता इससे एक एक क्षण वर्तमान है पूर्व व उत्तर क्षण कुछ नहीं है इससे क्षणोंका समाहार (संयोग) नहीं है जे हुए और होनेवाले क्षण हैं वह परिणाम संयुक्त व्याख्यान करने योग्य हैं केवल एक वर्तमानही क्षणसे सम्पूर्ण लोक परिणामका अनुभव करता है इन क्षणोंके आरूढ सब धर्म हैं इन क्षणों व क्षणोंके क्रमोंमें संयम सिद्ध करनेसे क्षण व क्रम साक्षात् होते हैं साक्षात् होनेके पश्चात् विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न ज्ञान) प्रकट होता है ॥ ५२ ॥

जातिलक्षणदेशैरन्यतानवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ॥ ५३ ॥

जब समान पदर्थोंमें जाति, लक्षण व देशोंसे एक दूसरेसे भेद होनेका निश्चय नहीं होता तब उससे अर्थात् विवेकज ज्ञानसे होता है ॥ ५३ ॥

लोकमें एक दूसरेसे भेद निश्चित होनेके तीन हेतु हैं जाति, लक्षण और देश जो दो पदार्थ देश व लक्षणमें समान हैं उनमें जाति अन्यता (एकके दूसरेसे भिन्न होना) जाननेमें हेतु होता है यथा गौ और नील गाँवमें जातिसे (जाति द्वारा) भेद होनेका ज्ञान होता है और जो जाति व देशमें दो पदार्थ समान होते हैं उनमें लक्षण उनके भेद जाननेमें हेतु (कारण)

होता है जैसे दो गौ जो जाति व देश [शरीरपरिमाण] में समान हैं उनमें लक्षण अर्थात् कृष्ण व शुक्ल (काले व सफेद) आदि रंगसे भेद विदित होता है और जो जाति व लक्षणमें तुल्य हैं उनमें देशसे भेद होनेका ज्ञान होता है यथा दो आंवले जो जाति व लक्षणमें समान हैं उनका भेद पूर्व व उत्तर देशसे जानाजाता है और जब इन दोनों आंवलोंको जिसनें प्रथम देखा है उसकी दृष्टि बचाकर पूर्वको उत्तर व उत्तरको पूर्वकर देवै तौ जाति लक्षणमें समान होने और देशका भेद न ज्ञात होनेसे भेदका निश्चय नहीं होता जब जाति लक्षण व देशोंसे भेद होना विदित नहीं होता तब योगीको विवेकजज्ञानसे भेद विदित होता है अर्थात् लोकको जाति लक्षण व देशद्वारा पदार्थोंके भेदका ज्ञान होता है योगियोंको विना जाति लक्षण देशके विवेकज ज्ञानसे भेद होनेका निश्चय होता है॥ ५३ ॥

तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ॥ ५४ ॥

तारकज्ञान जो विवेकज ज्ञानरूपहै विनाक्रम उसमें सब विषयोंका ज्ञान होनेसे कोई विषय शेष (बाकी) न रहनेसे तारक सर्व विषय है अर्थात् कोई विषय रहित नहीं है॥ ५४ ॥

तारकसंज्ञक विवेकजज्ञान संसारसागरसे तारता है इससे तारक कहते हैं इसमें सब विषयोंका ज्ञान होता है व विना क्रम एकही क्षणमें अनेक या सब पदार्थोंको जानता है कोई विषय इसमें शेष नहीं रहता इससे सर्व विषय हैं अर्थात् सब विषयोंके ज्ञान संयुक्त हैं॥ ५४ ॥

सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ॥ ५५ ॥

सत्त्वपुरुष दोनोंकी शुद्धि सम होनेमें मुक्ति होतीहै॥ ५५ ॥

जब रजोगुण व तमोगुण मलसे रहित शुद्धसत्त्वरूप अर्थात् सत्त्वगुण-

रूप बुद्धि होती है जिससे पुरुषके पृथक् (बुद्धिसे भिन्न) होने मात्रका बोध होता है व सम्पूर्ण क्लेशबीज भस्म होजाते हैं तब पुरुषका शुद्धरूप भासित होता है और पुरुष जो अविद्यासे दुःख सुख भोग करता है उस भोगका अभाव होता है यही पुरुष स्वरूपकी शुद्धि है जब इस प्रकारसे सत्त्व (बुद्धि) व पुरुषकी शुद्धि होती है तब मुक्ति होती है जिसके सत्त्व व पुरुषरूपकी शुद्धि होनेसे क्लेशबीज भस्म होजाते हैं उसके ज्ञानमें किसी सिद्धि या विभूतिकी अपेक्षा नहीं होती सत्त्वशुद्धि होनेके द्वारा समाधिसे उत्पन्न ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं परन्तु ऐश्वर्य प्राप्त होना मुख्य प्रयोजन नहीं है मुख्य परमार्थ यह है कि ज्ञान होनेसे अविद्याका नाश अविद्याके नाशसे क्लेशोंका नाश होता है क्लेशोंके अभाव (न रहने) से कर्म फलोंकी निवृत्ति होती है फिर पुरुषको भोग नहीं होता पुरुषस्वरूप मात्र निर्मल ज्योतिरूप रहता है यही पुरुषका कैवल्य नामक मोक्षहै ॥ ५५ ॥

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे देशभाषाकृतभाष्ये श्रीमत्प्यारेलालात्मजबाँदामण्डलान्तर्गततेरहीत्याख्यग्रामवासि श्रीप्रभुदयाल निर्मिते विभूतिपादस्तृतीयस्समाप्तः ॥ ३ ॥

अथ कैवल्यपादप्रारंभः ।

जन्मौषधिमंत्रतपस्समाधिजाः सिद्धयः ॥ १ ॥

जन्म, औषधि, मंत्र, तप और समाधिज (समाधिसे उत्पन्न) सिद्धियाँ हैं ॥ १ ॥

मनुष्य जन्ममें स्वर्गभोग फल प्राप्त होने योग्य धर्माचरण व्रत करनेसे देहत्याग करनेपर पुण्य विशेषसे देवजन्मको प्राप्त होता है देवयोनिमें होनेहीसे दिव्य देह होनेसे अणिमा आदि सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं यह जन्मसिद्धि है औषधिविशेषरूप रसायनोंके योगसे जरामरणका निवारण करना शरीरमें विशेष शक्तियोंका प्राप्त करना औषधिसिद्धि है मंत्रोंसे [मंत्रोंके द्वारा]

आकाशमें गमन करना व अणिमा आदि सिद्धियोंका प्राप्त होना मंत्रसिद्धि है तप करनेसे इच्छाचारी होना अणिमा आदि प्राप्त होनेका जो मनोरथ हो उसका पूर्ण होना तपसिद्धि है समाधिज सिद्धियोंका जो व्याख्यान होगया है यह पांच प्रकारकी सिद्धियां होती हैं सिद्धियोंके प्राप्त होनेसे जो योगी एक जातिसे अन्य जाति तथा रूपको धारण करताहै यह और और शरीर व रूपोंका होजाना तथा प्राणियोंका एक जन्मसे अन्य जन्ममें होना कैसे होता है शरीरोंके परिणाम [बदलने] के उपादान कारणोंका न्यून अधिक होना कैसे संभव है क्योंकि विना कारणकी विलक्षणता कार्यमें विलक्षणता वा भेद नहीं होसक्ता इस संदेह निवारणके लिये अन्यजाति व रूपमें प्राप्त होनेका हेतु आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ॥ २ ॥

प्रकृतिकी पूर्णतासे जात्यन्तरमें (और जाति वा जन्ममें) परिणाम होता है ॥ २ ॥

शरीर व इन्द्रियोंके एक जातिसे दूसरी जातिमें परिणाम होनेको जात्यन्तर परिणाम कहते हैं जैसे मनुष्यजातिमें परिणत [परिणामको प्राप्त] जो शरीर व इन्द्रिय हैं उनका देवता व तिर्य्यग् योनिमें परिणाम होना जात्यन्तरपरिणाम है यह परिणाम प्रकृतिके आपूर [पूर्णता] से होता है पृथिवी आदि जे भूत हैं यह शरीरकी प्रकृति है और अस्मिता इंद्रियोंकी प्रकृति है इन प्रकृतियोंका कारणरूपसे कार्यरूप अवयवोंके आकारमें भरने वा प्रवेश करनेको आपूर कहते हैं इस प्रकृत्यापूर अर्थात् प्रकृतिकी पूर्णतासे जात्यन्तरमें [दूसरे रूप व आकारमें]परिणाम होता है अब शंका यह है कि यह प्रकृत्यापूर धर्म आदि निमित्त[कारण] की अपेक्षा करता है कि विना धर्म आदि की अपेक्षा आपही प्रवृत्त होता है इसका समाधान यहहै कि धर्म आदि निमित्तकी अपेक्षा करताहै अर्थात् विना धर्म आदि निमित्तके नहीं होता ईश्वर नियम अनुसार धर्मसे अधर्मके निरास (खण्डित वा नष्ट) होजानेसे अर्थात् देवयोनि उत्तम जातिमें प्राप्त होनेके प्रतिबंधक (रोक) अधर्मोंके

नाश होनेसे प्रकृति आपही देवयोनिरूप परिणाम होनेमें प्रवृत्त होती है तथा अतिशय पापसे पापके रोकनेवाले पुण्यके दूर होनेसे पाप निमित्तसे तिर्यग्योनि आदिमें प्रकृतिका परिणाम होता है इसका दृष्टांत आगे सूत्रमें वर्णन किया है ॥ २ ॥

निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ॥ ३ ॥

निमित्त प्रकृतियोंका प्रयोजक (प्रवृत्त करनेवाला) नहीं है उससे आवरण भेद मात्र (केवल आडका दूरकर देना) क्षेत्रिक (खेतवाले) के समान होता है ॥ ३ ॥

धर्म आदि निमित्त प्रकृतियों (कारणों) के प्रयोजक (प्रवर्त करनेवाले) नहीं होते क्योंकि धर्म आदि प्रकृतिके कार्य हैं कार्य कारणका प्रवर्तक नहीं होता जैसे विना कुम्हारके उत्पन्न होनेवाला या उत्पन्नहुआ घट अपने कारण मिट्टी चक्र (चाक) दण्ड जल आदिकोंका स्वतंत्र (आपसे) प्रवर्तक नहीं होता क्योंकि घटकी उत्पत्ति उसके कारणोंके अधीन है, कारण घटके अधीन नहीं हैं घटके कारणोंका स्वतंत्र प्रवर्तक कुम्हार है इसी प्रकारसे प्रकृतियोंका स्वतंत्र प्रवर्तक ईश्वर है धर्म आदि परिणामके निमित्त हैं प्रकृतियोंके प्रयोजक अर्थात् प्रेरणा वा प्रवर्त करनेवाले नहीं हैं निमित्तसे केवल क्षेत्रिक (खेतवाले) के समान वरणभेद (आवरणका निवारण) होता है अर्थात् जैसे खेती करनेवाला खेतमें जल भरजानेपर उसके रोकनेवाली जो ऊंची वा आडकी मिट्टी है उसको दूर करता है उसके दूर होनेसे जल विना किसीकी प्रेरणा उस क्षेत्रसे आपही निकलकर अन्य क्षेत्रको जाकर भरता है इसी प्रकारसे धर्म जब ईश्वर नियम अनुसार अधर्मको जो देवजाति आदि उत्तम गतिके प्राप्त होनेका आवरण (आड वा रोक) है निवारण करता है तब प्रकृति आपही देवजाति आदि परिणाममें प्रवृत्त होती है

और धर्म जो दुर्गतिका आवरण है जब अधर्मसे दूर किया जाता है तब प्रकृति आपही तिर्य्यग्योनि आदिमें प्रवृत्त होती है अब यह संदेह होता है कि जब योगी बहुत शरीरोंको धारण करता है तब उसका चित्त एकही होता है या बहुत होते हैं इसका समाधान आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ ३॥

निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ॥ ४ ॥

अस्मिता मात्रसे निर्माण चित्त होते हैं ॥ ४ ॥

योग प्रभावसे बनाये गये चित्तका नाम निर्माण चित्त है योगी अस्मितामात्रसे निर्माण चित्तोंको अपने संकल्पमात्रसे निर्मित करता अर्थात् बनाता है इन निर्माण चित्तोंसे योगीके बनाये हुए सब शरीर चित्त संयुक्त होते हैं अब इस संदेहका समाधान कि बहुत चित्तोंके भिन्न भिन्न अभिप्राय होनेसे योगीको भोगकी सिद्धि नहीं होसक्ती आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ४

प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ॥ ५ ॥

प्रवृत्ति भेदमें एक चित्त अनेकोंका प्रवृत्त करनेवालाहै ॥५॥

अनेक चित्त जो योगी निर्माण करता है उन सबका प्रवर्तक नायक अपने भोगके अनुकूल प्रवृत्तिविशेषका नियामक एक चित्त विशेष निर्मित करता है उसके द्वारा इच्छाके अनुसार भोगमें प्रवृत्ति होती है अर्थात् अनेक चित्तोंके प्रवृत्तिभेदमें एक मुख्य चित्त जो सब चित्तोंका प्रवर्तक योगी निर्माण करता है उससे सब भोगोंमें प्रवृत्त होता है ॥ ५ ॥

तत्र ध्यानजमनाशयम् ॥ ६ ॥

उनमें ध्यानसे उत्पन्न अनाशय है ॥ ६ ॥

जन्म, औषध, मंत्र, तप और समाधि इन पांचोंसे जो सिद्धचित्तहैं उनमेंसे जो ध्यानसे उत्पन्न चित्त है वही अनाशय है अर्थात् उसकी आशय जो नाना प्रकारकी वासना राग आदि हैं उनमें प्रवृत्ति नहीं होती आशयोंसे रहित होनेसे वही मोक्षके योग्य है वा होता है ॥ ६ ॥

कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ॥७॥

अशुक्ल अकृष्ण कर्म योगीका व तीन प्रकारका औरोंका होता है ॥ ७ ॥

कर्म चार प्रकारके होते हैं एक कृष्णकर्म अर्थात् पापकर्म यथा हिंसा व्यभिचार आदि, शुक्लकर्म अर्थात् पुण्यकर्म यथा तप स्वाध्याय ध्यान आदि तीसरे शुक्ल व कृष्णकर्म अर्थात् पाप व पुण्य मिलेहुए यथा परपीडा व अनुग्रह आदिका समूह चौथे अशुक्ल अकृष्ण अर्थात् पाप व पुण्य दोनोंसे रहित यह चौथा फलकी इच्छा रहित ईश्वर समर्पित संन्यासी क्लेश क्षीण योगीका कर्म है और पूर्वोक्त तीन प्रकारके कर्म और संसारी विषयी प्राणियोंके होते हैं ॥ ७ ॥

ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ॥ ८ ॥

उससे (उक्त त्रिविध कर्मसे) उसके विपाकके समान गुण वा योग्य गुणरूपही वासनाओंकी प्रकटता होती है ८॥

उससे अर्थात् त्रिविध कर्मसे इसके विपाक [फल देनेके योग्य होनेकी अवस्था] के समान वा योग्य गुणरूपही वासनाओंकी प्रकटता होती है अर्थात् जिस जातिके कर्मका जो विपाक [फल देने योग्य होनेकी अवस्था] है उसके योग्य वा समान गुणरूप जो वासना कर्मविपाकमें सोये हुएके समान प्राप्त रहती हैं उनहींकी प्रकटता होती है अर्थात् दैवकर्म [उत्तम कर्म] परिपाकको प्राप्त नारक [नरकवाली] तिर्य्यङ् मनुष्य वासनाओंकी प्रकटताका निमित्त नहीं होता है किन्तु दैवकर्मविपाकके अनुगुण जे वासना हैं उनहींके प्रकट होनेका निमित्त होता है अर्थात् दैवकर्मविपाकके योग्यही गुणरूप वासना प्रकट होती हैं इसीप्रकारसे नारक तिर्य्यङ् मनुष्योंके

कर्मोंके विपाकके अनुगुणही वासनाओंका प्रकट होना जानना चाहिये क्योंकि दैवकर्मका दिव्यभोग फल होना योग्य है नरक भोग वासना आदिके प्रकट होनेमें दिव्यभोगका संयोग नहीं होसक्ता तथा नरक व मनुष्य भोगमें दिव्य स्वर्गभोग वासनाओंका होना संभव नहीं है क्योंकि उनकी प्रकटतामें नरकभोग आदिका होना योग्य नहीं है इससे जिस जातिवाले कर्मका जो विपाक है उसीके योग्य गुणरूप वा योग्य गुणवाली वासनाओंकी प्रकटता होती है अन्यथा नहीं यह सिद्ध होता है ॥ ८ ॥

जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्य्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ॥ ९ ॥

स्मृति व संस्कारके एकरूप होनेसे जिनके बीचमें अनेक जाति, देश व कालगत होजाते हैं उनका भी. अन्तर नहीं होता अर्थात् जाति देश व काल भेद होजानेपरभी उनमें अन्तर (भेद) नहीं होता ॥ ९ ॥

कर्मविपाकके समान गुणरूप वासनाओंका प्रकट होना जो वर्णन किया है उसमें यह निश्चय होना चाहिये कि जैसे व्यतीत हुए पूर्वदिन [कल्ह] के पश्चात् जो आजका वर्तमान दिन है उसमें पूर्वदिनका स्मरण होना संभव है बहुतदिन जिसके बीचमें व्यतीत होगये हैं उसका स्मरण होना संभव नहीं है इसी प्रकारसे जिस जन्मके पश्चात् दूसरा जन्म होता है व उसके बीचमें और जन्म आदि व्यतीत नहीं होते उसी पूर्व जन्मकी वासनाकी प्रकटता होती है वा उस पूर्व जन्मका स्मरण होता हैं अथवा बहुत जन्म आदि बीचमें व्यतीत होजानेपरभी बहुतकाल पूर्व हुए जन्मकी वासनाकी प्रकटता होती है यह निश्चय होनेके लिये सूत्रमें यह कहा है कि स्मृति व संस्कारके एकरूप होनेसे अर्थात् समान रूप होनेसे जाति, देश व कालसे व्यवहित (अन्तरको प्राप्त) जो वासना हैं

उनकाभी फलसे (यथार्थरूपसे) अन्तर [पृथक्ता वा भेद] नहीं होता इसका एक दृष्टांत उपलक्षणमात्रके लिये इसप्रकारसे जान लेना चाहिये यथा किसी कालमें बिलारकी वासना हुई और वीचमें अनेक जन्म देश व कालका व्यवधान होगया परन्तु फिरभी जिस कर्मका बिलारका जन्म होना फल है उसके विपाकसे उस विपाकके समान वा योग्य गुणवाली बिलारहीके वासनाकी प्रकटता होती है इसी प्रकारसे औरभी उत्तम, मध्यम व निकृष्ट वासनाओंका होना जानना चाहिये । क्योंकि जैसे पूर्वमें अनुभव होते हैं उसी प्रकारके संस्कार चित्तमें स्थित होतेहैं और वह संस्कार कर्म व वासना रूप होते हैं जैसी वासना होतीहै वैसी स्मृति होती है जाति, देश व कालसे व्यवधानको प्राप्त संस्कारोंसे स्मृति होती है स्मृतिसे फिर संस्कार होते हैं यह स्मृति व संस्कार कर्माशय व चित्त-वृत्तिके लाभवशसे प्रकट होतेहैं इससे जिन वासनाओंमें जाति देश व कालसे व्यवधान भी होताहै उनमें भी उनके निमित्त व नैमित्तिक भाव बने रहनेसे (कारण कार्य भाव सम्बंध रहनेसे) भेद नहीं होता संस्कार कारणरूप व स्मृति कार्यरूप है कारण व कार्यका अभेद भाव मानकर अथवा दोनोंका समान विषयमें सम्बन्ध होनेसे स्मृति व संस्कार-का एकरूप (समानरूप) होना कहा है क्यों कि जिस कर्मजातिका जो विपाक है उसी सजातीय कर्मके विपाकहीके समान वा योग्य गुणवाली संस्कार व स्मृतिरूप वासनाओंके होनेका नियम है विजातीयकर्मका विपाक विजातीय वासनाओंके होने वा उदय होनेका निमित्त (हेतु) नहीं होता ॥ ९ ॥

तासामनादित्वञ्चाशिषो नित्यत्वात् ॥ १० ॥

आशिषके नित्य होनेसे उनका अनादि होना भी सिद्ध होता है ॥ १० ॥

वासनाओंका अन्तर न होना जो वर्णन किया है उससे अधिक वासना-ओंके अनादिभी होनेके वर्णनमें यह कहा है कि आशिष (होने वा बने

ोंकी प्रार्थना) के नित्य होनेसे उनका [वासनाओंका] अनादि होना
ना सिद्ध होताहै अर्थात् मैं सदा बना रहूं मरूं नहीं ऐसा आशिष अर्थात्
प्रार्थनारूप अभिलाषा व त्रास नित्य होनेसे वासनाओंका अनादि होना
विदित होता है क्यों कि जो उत्पन्नमात्र बालक है उसमें कंप होना
व उसके मुखकी आकृति बिगडना यह भयके चिह्न देखनेसे
द्वेष व दुःखकी स्मृति व मरण त्रासके अनुमान होनेसे व वर्तमान
जन्ममें द्वेष दुःखके अनुभव होनेका कारण संभव होनेसे जन्मान्तर
(दूसरे पूर्वजन्म) होने व वासनाओंके अनादि होनेका ज्ञान होता है
जो यह कहा जाय कि उत्पन्न बालकमें मुखकी आकृतिका बिगडना
कांपना मुसक्याना दुःख व सुखके निमित्तोंके स्मरणसे नहीं होते कमल
आदिके संकोच व विकाशके समान स्वाभाविक हैं तो कमल आ-
दिका संकोच (सिकुडना) विकाश (फूलना) भी अग्नि आदिमें गरमी
आदि होनेके समान निमित्तरहित स्वभाविक नहीं है क्योंकि निमित्त
विशेष होतेहैं परन्तु जिन निमित्तोंसे कमल आदिके संकोच विकाश
आदि होतेहैं उनसे व उनके समान बालकका कांपना रोना मुसक्याना
आदि नहीं होते किन्तु जैसे हमलोगोंको भय सुख दुःख होनेमें मुख
व शरीरके आकार होते हैं उसी प्रकारसे होनेसे बालकको पूर्व जन्ममें
हुए सुख दुःखके स्मरण होनेका अनुमान होता है अब यह सन्देह है कि
देह आत्मा नहीं है आत्मा अनादि मरण त्रासरहित है इससे आत्मामें
स्वाभाविक मरणत्रास नहीं होसक्ता यह मरणत्रास किसका होताहै ?
उत्तर–मरणत्रास चित्तको होताहै चित्त निमित्त वशसे अनादि वासना-
ओंसे बधा है कोई वासनाओंको प्राप्त होकर पुरुषके भोगके लिये प्रवृत्त
होता है छोटे व बडे देह परिमाणमात्रमें चित्तका संकोच व विकाश
होना घट व महलमें प्रदीपके प्रकाशके संकोच विकाश होनेके समान है
धर्म आदि निमित्तकी अपेक्षासे इस विभुरूप चित्तका वृत्तिमात्रसे शरीर-
मात्रसे संकोच विकाश होता है. निमित्त दो विधका होता है, बाह्य व
आध्यात्मिक; शरीर आदि साधनकी अपेक्षा जिसमें है वह बाह्य है. स्तुति,
दान वन्दन आदि चित्तमात्रके अधीन जो श्रद्धारूप है वह आध्यात्मि-

क हैं. अब अनादि वासनाओंकी निवृत्ति किस तरह होती है आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १० ॥

हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ ११ ॥

हेतु, फल, आश्रय व आलम्बनोंसे संगृहीत होनेसे इनके अभाव होनेमें उनका अभाव होता है ॥ ११ ॥

हेतु आदिके उदाहरण ये हैं यथा धर्मसे सुख, अधर्मसे दुःख, सुखसे राग और दुःखसे द्वेष होता है इससे धर्म आदि सुख आदिके हेतु[कारण] हैं राग द्वेषसे प्रयत्न होता है उससे किसीपर अनुग्रह करता है किसीपर क्रोध करके उसको नाश करता है ऐसा करनेसे फिर धर्म, अधर्म, सुख, दुःख, राग व द्वेष होते हैं इन सबका मूल हेतु अविद्या है जिसमें आश्रित होकर जो उत्पन्न होता है वह उसका फल है यथा धर्म आदिके सुख भोग आदि फल हैं भोग अधिकार संयुक्त मन आश्रय हैं क्योंकि मनमें ये सब आश्रित रहते हैं जिसके सन्मुख होनेसे जो वासना प्रकट होती है वह उस वासनाका आलम्बन है यथा कामिनी काम उत्पन्न होनेकी आलम्बन है इत्यादि. इससे रूप आदि विषय आलम्बन हैं इन हेतु, फल, आश्रय आलम्बनोंसे (आलम्बनोंके साथ) सब वासना संगृहीत हैं इससे इनके अभाव होनेसे इनमें आश्रित जो वासना है उनकाभी अभाव होता है ॥ ११ ॥

अब यह संशय होताहै कि असत्का भाव व सत्का नाश नहीं होता फिर सत् वासनाओंका अभाव कैसे होगा इसका समाधान आगे वर्णन करते हैं—

अतीतानागतस्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ॥ १२ ॥

धर्मोंके अध्वभेद होनेसे अतीत अनागत स्वरूपसे है १२॥

असत्का संभव [उत्पन्न होना] व सत्का विनाश नहीं होना यह मान;

T

नेके लिये इस अभिप्रायसे कि जो सत् धर्म है उन्हींका अध्व भेद मात्रसें उदय व नाश होना समझना चाहिये. सूत्रमें यह कहा है कि धर्मोंके अध्व-भेद होनेसे अतीत व अनागत स्वरूपसे (अपने रूपसे) है अर्थात् जो ऐसा मानाजाय कि अतीत अनागत सत् नहीं हैं तौ ऐसा मानना यथार्थ नहीं है क्योंकि जो अतीत अनागत न होते तौ निर्विषय (शून्यरूप) अतीत व अनागतका ज्ञान उत्पन्न न होता और विना अतीत अनागत[भूत व भविष्यत्] भेदके वर्तमान होनेका भी ज्ञान न होता इससे अतीत अनागत स्वरूपसे सत् है और भोग प्राप्त करनेवाले अथवा मोक्ष प्राप्त करनेवाले कर्मोंके फल प्राप्त होनेकी इच्छा की जाती है जो असत् है तौ धर्म आदिके उद्देशसे उत्तम अनुष्ठान योग्य नहीं मानना चाहिये क्योंकि जो सत् है वही फलका निमित्त होता है व हो सक्ता है अनेक धर्म स्वभाववाला जो धर्मी है उसके अंग भेदसे उससे धर्म होते हैं जिस प्रकारसे वर्तमान व्यक्ति विशेषको प्राप्त द्रव्य है इसप्रकारसे अतीत अनागत नहीं है अनागत अपने व्यङ्ग स्वरूपसे प्राप्त होता है और अतीत अपने पूर्वमें हुए स्वरूपसें व्यतीत होता है ॥ १२ ॥

जो यह संशय हो कि जो अतीत अनागत वर्तमानके समान व्यक्तिविशेष संयुक्त नहीं है तौ उनका स्वरूप क्या है ? इसका समाधान आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं—

ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मानः ॥ १३ ॥

वह व्यक्त व सूक्ष्म रूप गुणात्मा [गुण स्वरूप वाले]है १३

तीन अध्वावाले जे धर्म है उनमेंसे वर्तमान व्यक्तरूप हैं और अतीत अनागत सूक्ष्मरूप है परमार्थ रूपसे तीनों गुणात्मा हैं अर्थात् गुण स्वरूप हैं गुणोंका जो परम सूक्ष्मरूप है वह दृष्टिमें नहीं आता अर्थात् उसका प्रत्यक्ष नहीं होता और जो दृष्टिमें आता हैं वह सब मायारूप

---

१ जो होगया है वह अतीत है जो होनेवाला है यह अनागत और जो अपने व्यापारमें आरूढ़ है अर्थात् होरहा है वह वर्तमान है ।

तुच्छ प्रतिक्षण परिणामको प्राप्त होनेवाला क्षणविध्वंसी है. अब यह संशय है कि जैसे मिट्टी दूध सूत भिन्न भिन्न पदार्थोंका एक परिणाम नहीं होता इसी प्रकारसे बहुत गुणोंका एक परिणाम न होना चाहिये इसका उत्तर यह है कि बहुतोंका भी एक परिणाम होता है यथा बत्ती तेलका एक दीप परिणाम होताहै लवण क्षेत्रमें फेंके गये जो गज अश्व आदिके शरीर हैं उन सबके एक लवण परिणाम होता है इत्यादि एक परिणाम होनेको आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं ॥ १३ ॥

परिणामैकत्वाद्वस्तुत्वम् ॥ १४ ॥

परिणाम एक होनेसे एक वस्तु होना अंगीकार होता है ॥ १४ ॥

ज्ञानक्रिया व स्थितिस्वभाववाले ग्रहणरूप गुणोंका कारण भावसे एक परिणाम यथा श्रोत्र [कान] इन्द्रिय आदि ग्राह्य रूप शब्द आदि विषयोंका विषयभावसे एक परिणाम है पार्थिव [पृथिवीके कार्य] भावसे गौ वृक्ष पर्वत आदिका एक परिणाम है इसी प्रकारसे अन्यत्र जानना चाहिये अर्थात् इसी प्रकारसे एक विशेष भावसे एक परिणाम होनेका ग्रहण वा अंगीकार होताहै अब कोई यह कहते हैं कि जो कुछ विदित होता है वह सब विज्ञानहीका भेद है अर्थ कुछ नहीं है क्योंकि विज्ञान [बोध] से भिन्न अर्थका होना सिद्ध नहीं होता विना अर्थके विज्ञानका होना विदित होता है यथा स्वप्न आदिमें जो कल्पित वस्तुओंका होना भासित होता है वह ज्ञान परिकल्पना मात्र है इसी प्रकारसे जाग्रतमें जानना चाहिये परमार्थसे वस्तु वा अर्थ कुछ नहीं है इसके प्रतिषेधके लिये अर्थात् विज्ञानसे अर्थ पृथक् है यह प्रतिपादनके लिये विज्ञान व अर्थके भिन्न होनेका हेतु आगे सूत्रमें वर्णन करतेहैं ॥ १४ ॥

वस्तुसाम्येऽपि चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पंथाः१५

वस्तुके समहोने (एकही होने) मेंभी चित्तके भेद होनेसे दोनोंका मार्ग भिन्नहै अर्थात् दोनोंके स्वरूप भिन्नहैं ॥१५॥

वस्तु के एक होनेमें भी चित्तमात्रके भेद होनेसे चित्त व वस्तुके स्वरूप भिन्नहैं दोनोंका एक होना सिद्ध नहीं होता जैसे एकही स्त्रीमें पतिको सुख सवतिको दुःख कामीको मोह ज्ञानी निष्कामको विराग होनेका ज्ञान होताहै इत्यादि एकही पदार्थमें चित्तोंके भेद होते हैं इस प्रकारसें निमित्तभेदसे एकही अर्थमें भिन्न भिन्न ज्ञान होनेसे वस्तु व ज्ञान ग्राह्य ग्रहण भेद रहित स्वरूपसे भिन्न हैं. इसपर विज्ञानवादी यह कहते हैं कि अर्थका पृथक् [भिन्न] मानना यथार्थ नहीं है. भोग्य होनेसे सुख आदिके समान ज्ञानके साथही अर्थ है; ज्ञानसे भिन्न अर्थ नहीं हैं. यदि ज्ञानसे भिन्न भी होय तो जड होनेसे ज्ञानसे पृथक् सिद्ध नहीं हो सक्ता ज्ञानहीसे जाना जाता है. इससे जिस समय तक ज्ञान होताहै उसी समयमें अर्थके होनेका प्रमाणहै पश्चात् प्रमाणके अभावसे अर्थ कुछ नहीं है इसके उत्तरमें अर्थके पृथक् होनेका अन्य [दूसरा] प्रमाण वर्णन करते हैं ॥ १५ ॥

न चैकचित्ततंत्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ॥ १६ ॥

एक चित्ततंत्र (चित्तअधीन) भी वस्तु नहीं है तब वह क्या प्रमाण रहित हो अर्थात् प्रमाण रहित न मानना चाहिये ॥ १६ ॥

जो एकचित्त तंत्र अर्थात् एक चित्त अधीन ज्ञान रूपही वस्तु [अर्थ] होती तो जब घट ग्रहण करनेवाला चित्त कपडा आदि अन्य

वस्तुमें मग्न होकर घटमें प्रवृत्त नहीं होता तब वह घट किसीको प्रत्यक्ष न होना चाहिये और जो किसी चित्तसे ग्रहण न किया जाता तो वस्तुका प्रमाण रहित असत् मानना यथार्थ होता परन्तु ऐसा नहीं होता क्योंकि जिस वस्तुका एक चित्तमें बोध नहीं होता वह दूसरे चित्तसे जाना जाता है इससे वस्तुको प्रमाणरहित न मानना चाहिये और जो यही माना जाय कि जिसमें चित्त प्रवृत्त होताहै वही अर्थमात्र सत् व प्रमाण युक्त है तो जिससे जिसका व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है उसमें सम्बन्धवाले पदार्थका अवयवसे अवयवी आदिका ज्ञान न होना चाहिये यद्यपि जो जो (पहिले) का भाग है वह मध्य व पर भागसे व्याप्त है अथवा मध्य व पर भागके साथ सम्बन्धको प्राप्तहै परन्तु उक्त हेतुसे जब चित्तसे पहिले भागका ज्ञान होवे तब मध्य व परभाग नहीं है ऐसा सिद्ध होताहै और ऐसा मानना चाहिये क्योंकि जो चित्तसे अज्ञात है अर्थात् ग्रहण नहीं किया गया वह प्रमाण-रहित असत् है अर्थात् नेत्र द्वारा उदर मात्रके ज्ञान होनेके समयमें पृष्ठि नहीं है इसी प्रकारसे पृष्ठि देखनेके समय वा उपरके परमाणु मात्र दृष्ट होनेमें व्याप्य व्यापक सम्बन्धके अभावसे उदर भी कुछ नहीं है ऐसा मानना होगा परन्तु ऐसा अंगीकार नहीं होता क्योंकि यह अनुभव ज्ञान विरुद्ध व अयुक्त है इससे चित्ततंत्र अर्थ (वस्तु) नहीं है अर्थ स्वतंत्र है और चित्त स्वतंत्र है दोनोंके सम्बन्धसे जो बोध होता है वह पुरुषका भोग है ॥१६॥

तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम्॥१७॥

चित्तके उसके (वस्तुविषयके) उपरागका अपेक्षी (अपेक्षा रखनेवाला) होनेसे वस्तु[1] ज्ञात व अज्ञात होती है ॥ १७ ॥

वस्तुका ज्ञान होनेके लिये चित्तका वस्तुके साथ उपराग होनेकी

---

१ यद्यपि वस्तु शब्द नपुंसकलिंगहै और नपुंसकलिंगका व्यवहारपुल्लिंगके समान होताहै परन्तु वस्तुको संप्रति प्रचलित भाषामें स्त्रीके समान कहते हैं इससे स्त्रीलिंगकी क्रिया भाषामें रक्खी है।

अपेक्षा रहती है जिस वस्तुके साथ चित्त उपराग युक्त होता है उसको जानता है अन्यको नहीं. अयस्कान्त मणि अर्थात् चुम्बकके समान वस्तु वा विषयहै जैसे जड चुम्बक लोहेको अपनीतरफ खींचताहै इसी प्रकारसे जो विषय वा वस्तु चित्तको आकर्षण करके अपने उपराग (प्रीति वा अभिलाषा) युक्त करती है अर्थात् जिस वस्तुके साथ चित्त उपराग युक्त इन्द्रिय द्वारा सम्बन्धको प्राप्त होताहै वह ज्ञात होती है उससे पृथक् (भिन्न) अज्ञात रहती है वस्तुके ज्ञात और अज्ञात होनेसे चित्तका परिणामी (बदलनेवाला) होना सिद्ध होताहै ॥ १७ ॥

सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ॥ १८ ॥

उसके प्रभुके परिणामी न होनेसे चित्तकी वृत्तियाँ सदा ज्ञात होती हैं ॥ १८ ॥

जो चित्तके समान प्रभु पुरुष है उसका परिणाम होता तो चित्तकी वृत्तियाँ जो उसके विषय हैं वह शब्द आदि विषयोंके समान ज्ञात व अज्ञात होतीं परन्तु चित्तकी वृत्तियां वा चित्तके सदा ज्ञात होनेसे उसके [चित्तके] प्रभु पुरुषके परिणामी न होनेका अनुमान होताहै क्योंकि जो प्रभु परिणामको प्राप्तहोता तो चित्तके सदा ज्ञात होनेकी उपलब्धि न होती. पुरुष परिणाम रहित है, इससे वह सदा मन वा चित्तको जानता है अर्थात् जो पुरुष परिणामको प्राप्त होता तो भूतकालमें भोगको प्राप्त हुए विषयको स्मरण न करसक्ता क्योंकि जिस पुरुषने भोग कियाथा वह न रहता तथा अपने चित्तकी वृत्तियोंको सदा न जानसक्ता भूतकालके विषयोंके स्मरण व सदा वृत्तियोंके ज्ञात होनेसे पुरुषका परिणाम नहीं होता यह सिद्ध होता है ॥ १८ ॥

T

अब यह जाननेके लिये कि चित्त आग्निके समान अपनेही प्रकाशसे प्रकाशित होता है वा नहीं इसका सिद्धान्त आगे वर्णन करते हैं—

न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात्॥ १९ ॥

दृश्य होनेसे वह अपने प्रकाशसे प्रकाशित नहीं होता ॥१९॥

जैसे अन्य इन्द्रिय व शब्द आदि दृश्य होनेसे आपसे प्रकाशित नहीं होते इसी प्रकारसे दृश्य होनेसे वह अर्थात् उक्त चित्त वा मन आपसे प्रकाशित नहीं होता उसका प्रकाशक पुरुषहै, अग्निके समान अपने प्रकाशसे प्रकाशित होनेका दृष्टांत चित्तमें युक्त नहीं है, ज्ञानरूप प्रकाश विना प्रकाश्य व प्रकाशक (ज्ञाता व ज्ञेय) के सम्बंध नहीं होता. यह प्रकाश क्रियारूप है क्रिया विना कर्ता करण व कर्मके नहीं होती यथा पकानेकी क्रिया विना पकानेवाले व अग्नि व तण्डुल (चावल) आदिके नहीं होती इसी प्रकारसे जीवोंको अपने चित्त वा बुद्धिके व्यापार व प्रकाश्य (ज्ञेय) वस्तुके संयोगहीसे ऐसा बोध होता है कि मैं क्रोधको प्राप्तहूं मैं डरता हूं मैं आनन्दको प्राप्त हूं इसमें मेरी प्रीति है इसमें मेरा द्वेष है इत्यादि ॥१९॥

एकसमये चोभयानवधारणम् ॥ २० ॥

और एक समयमें दोनोंका धारण नहीं होता ॥ २० ॥

एक समयमें अपने व परके रूपका धारण नहीं होता इसमेंभी भेद होना प्रतीत होता है अर्थात् अपने स्वरूप (आत्मज्ञान) व परस्वरूप (चित्त व विषयका ज्ञान) एक समयमें एकही व्यापारसे नहीं होता जब अविद्यासे चित्तमें प्राप्त क्रोध आदिको अपनेमें मानता है तब अपने स्वरूपको नहीं जानता और विवेकसे अपनेको जानता है इससे प्रकाशक प्रकाश्य और व्यापार भेद होना विदित होता है ॥ २० ॥

चित्तान्तरदृश्यत्वे बुद्धिबुद्धेरतिप्रसङ्गः स्मृतिसङ्करश्च ॥ २१ ॥

अन्य चित्तके दृश्य (ज्ञेय) होनेमें बुद्धिसे बुद्धिका अतिप्रसंग व स्मृतिसंकर (स्मृतियोंका मेल) होताहै ॥ २१ ॥

जो चित्तसे भिन्न कोई पदार्थ न माना जाय चित्तही द्रष्टा [ज्ञाता] व चित्तही दृश्य [ज्ञेय] अंगीकार कियाजाय अर्थात् एक चित्त द्रष्टा व अन्य चित्त दृश्य मानाजाय तौ नीलाकार वा नीलरूप चित्त व जिस किसी चित्तका वह दृश्य है व नीलरूप होनेकी बुद्धि सब चित्तरूपही हैं इससे बुद्धिरूप चित्तकाभी अन्य बुद्धिसे ग्रहण किया जाना मानना चाहिये तथा वह अन्य बुद्धिसे और वह भी अन्य बुद्धिसे इस प्रकारसे सम धर्मवाली बुद्धियों वा समधर्म व सजातीय चित्तोंका दूसरेसे ग्रहण किया जाना अंगीकार करते जानेमें अनवस्था दोष होनेसे कोई एक विशेष ग्राहक अंतवाला चित्त होनेका प्रमाण नहीं होसक्ता ग्राहकचित्त व ग्राह्य चित्तके यथार्थ निश्चय होनेसें घरमें घट देखा वा नहीं इस संशयसे देखनेका प्रमाण होना संभव नहीं हैं और अर्थ व निश्चयके भिन्न होनेका निश्चय होनेसे ज्ञान चित्तोंका निश्चय न होना अर्थोंके निश्चय न होनेका कारण होनेसे अनन्त बुद्धियों (ज्ञानों) का अति प्रसंग और अनन्त चित्तोंके अनुभवमें अनन्त स्मृतियोंका संकर [मेल] प्राप्त होगा अनन्तके ग्रहण करनेमें कोई एक समर्थ न होनेसे ग्राहकका अभाव होगा ग्राहकके अभावसे यह नील चित्त स्मृति है यह पीत चित्त स्मृति है यह विभाव नहीं होसक्ता इससे ग्राह्य व ग्राहकके असंभव होनेसे कोई चित्तसे पृथक् चेतन पुरुष चित्तका स्वामी भोक्ता होना विदित होता है ॥ २१ ॥

चितेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धि संवेदनम् ॥ २२ ॥

चिति शक्ति जो अप्रतिसंक्रमा (परिणाम रहित) है उसका उसके आकारमें प्राप्त होनेमें अर्थात् बुद्धिके आकार (रूप) में प्राप्त होनेमें अपनी बुद्धिका सम्वेदन (जानना] कहाजाता है ॥ २२ ॥

पुरुषकी जो चिति [ज्ञानरूप] भोक्ता होनेकी शक्ति अप्रतिसंक्रम है अर्थात् परिणाम रहित है उसका जो बुद्धिके आकारको प्राप्त होना है अर्थात् क्रियासे अनेक परिणामको प्राप्त होनेवाली जो बुद्धि है उसके समान भासित होना है यही पुरुषके अपनी बुद्धिका सम्वेदन कहा जाता है अर्थात् यही विशेषण रहित बुद्धि वृत्तिरूप पुरुषकी ज्ञान वृत्ति कही जाती है यद्यपि चिति शक्तिके बुद्धि आकार होनेमें कोई टीकाकार जलमें चन्द्रके प्रतिविम्ब भासित होनेके समान उपमा देते हैं परन्तु यह युक्त नहीं है क्योंकि प्रतिविम्ब मूर्तिमान् साकार पदार्थमें होता है चिति व बुद्धि निराकार पदार्थ हैं इससे सूत्रमें जो आकार शब्द है वह समरूप वा समभाव होनेके अर्थमें समझना चाहिये निराकार आकाशका जलमें भासित होनेके समान जो चिति व बुद्धिकी उपमा दीजावे तो ग्रहण योग्य होसक्ती है ॥ २२ ॥

द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ॥ २३ ॥

द्रष्टा व दृश्यसे उपरक्त [रागको प्राप्त] चित्त सर्वार्थ है अर्थात् सब अर्थ रूप है ॥ २३ ॥

चेतन पुरुष द्रष्टा है शब्द स्पर्श आदि विषय अचेतन दृश्यहैं ये सब चेतन अचेतन चित्तके विषय होते हैं इसमेंसे जिसमें चित्त उपरक्त होताहै

वा जिसके साथ सम्बंध संयुक्त होता है उसीके आकारसे भासित होताहै इससे चित्त सर्व अर्थरूप है जब चित्त द्रष्टा [पुरुष] से उपरक्त होताहै तब द्रष्टाके आकारसे भासित होताहै इन्द्रिय आदिके द्वारा जब दृश्यसे उपरक्त होताहै तब दुःख सुख भोग रूप दृश्यरूपसे भासित होताहै जैसे स्फटिक मणिमें जिस राग वा रूपका आभास पडता है उसी रूपसे भासित होती है इसी प्रकारसे चित्तको समझना चाहिये यद्यपि चित्त व स्फटिक मणिकी उपमामें साकार आकार होनेसे अयोग्य होनेकी शंका होसक्ती है परन्तु तत्त्वरूपसे न होने व अयथार्थ भासित होने मात्रमें साधर्म्य मानकर अंगीकार करना चाहिये एक अंशमें जिससे उपमाका प्रयोजन हो सम धर्म होनेसे उपमाका यथार्थ होना मान लिया जाता है. अब चेतन व अचेतन स्वरूपको प्राप्त चित्तके स्वरूपमें वहुत भ्रमको प्राप्त है कोई चित्तहीको चेतन मानते हैं, कोई चित्तही मात्रको सब मानते हैं यथा कोई वैनाशिक बाह्य अर्थको भी मानते हैं कोई विज्ञानही मात्रको मानते हैं और अर्थ कुछ नहीं है, यह कहते हैं परन्तु यह यथार्थ नहीं है चित्त भोग्य है व भोक्ता पुरुष उससे पृथक् है जैसा कि पूर्वही वर्णन होचुका है ॥ २३ ॥

तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ॥ २४ ॥

वह असंख्येय वासनाओंसे विचित्र भी संहत्यकारित्वसे परके निमित्त है ॥ २४ ॥

वह अर्थात् चित्त असंख्येय वासनाओंसे विचित्र भी है तथापि संहत्यकारित्व जो देह व इन्द्रियोंका मेल है उससे पर जो पुरुष है उसके भोग व अपवर्गके निमित्त है अपने भोगके निमित्त नहीं है व पुरुष संहत्य-कारित्वसे रहित नित्य शुद्ध ज्ञानमय है. जैसे गृहस्वामी गृहमें प्राप्त सम्पूर्ण

चित्र विचित्र पदार्थोंको भोग करता है परन्तु सब पदार्थोंसे भिन्न होता है इसी प्रकारसे सुख दुःख रूप भोग व अपवर्गका भोग करनेवाला पुरुष सब इन्द्रिय व विषयोंसे पृथक् है ॥ २४ ॥

विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ॥२५॥

विशेष दर्शी (ज्ञानी) को आत्मभावकी भावना होना निवृत्ति है ॥ २५ ॥

जैसे वर्षा होनेमें तृण व अंकुरके जमनेसे तृण अंकुरके बीजके सत्ताका अनुमान होता है इसी प्रकारसे जिसको मोक्ष मार्गके सुननेसे आनन्द अश्रुपात व रोमहर्ष होय उसमें विशेष दर्शन अर्थात् जो विवेक, अज्ञान, मोक्ष प्राप्त करनेवाला व सब क्लेश कर्मसे निवृत्त करनेवाला है उसके सत्ताका अर्थात् उसके विद्यमान होनेका अनुमान किया जाता है विशेष दर्शी (ज्ञानी) को आत्मभावकी भावना होना क्लेश व कर्मकी निवृत्तिरूप है उसके होनेसे सम्पूर्ण क्लेश व कर्म निवृत्त होजाते हैं आत्मभावकी भावनासे इस निर्णयमें रुचि होती है कि मैं कौन था? कैसा था ? यह क्या है ? किस प्रकारसे है ? मैं कौन होऊंगा और कैसे किस दशामें हूँगा ? यह विचार व भावना विशेष दर्शीको निवृत्त करती है क्योंकि चित्तहीका विचित्र परिणाम होता है पुरुष अविद्याके नाश होजानेमें चित्तके धर्मोंसे रहित शुद्ध स्वरूप होता है॥२५॥

तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ॥२६॥

तब कैवल्य (मोक्ष) के पूर्वही चित्त विवेक निम्न (विवेकसे गंभीर) होताहै अर्थात् पूर्ण विवेकयुक्त होताहै ॥२६॥

अब ज्ञानी विषय वासनाओंरहित आत्मभावकी भावनासे कर्मसे निवृत्त होता है तब उसका चित्त जो विषय भोगमें आसक्त अज्ञान निम्न था वह मोक्ष होनेसे पहिले विवेकजज्ञान (विवेकसे उत्पन्न) निम्न होता है अर्थात् पूर्ण विवेकजज्ञानमें निश्चल स्थिर वा आश्रित होता है ॥ २६ ॥

T

तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ॥ २७ ॥

उसके छिद्रोंमें अर्थात् विवेक भेद होनेके क्षणों वा समयोंमें संस्कारोंसे अन्य प्रत्यय होते हैं ॥ २७ ॥

विवेक निम्न चित्तमें विवेकमें भेद होनेके समयोंमें पूर्व संस्कारोंसे [व्युत्थान संस्कारोंसे] मैं हूँ यह मेरा है मैं जानता हूँ मैं नहीं जानता अज्ञानी हूँ इत्यादि ऐसे अन्य प्रत्यय उत्पन्न होते हैं ॥ २७ ॥

हानमेषां क्लेशवदुक्तम् ॥ २८ ॥

इनका हान (नाश) क्लेशोंके समान कहागया है॥२८॥

जिस ज्ञानीका विवेक परिपक्व होगया है उसके व्युत्थान संस्कार क्षीण होजानेसे अन्य प्रत्ययोंके अर्थात् फिर क्लेश व व्युत्थान प्रत्योंके उत्पन्न करनेको समर्थ नहीं होते इससे यह कहा है कि इनका अर्थात् जिनका बीज नष्ट होगया है ऐसे पूर्व व्युत्थान संस्कारोंका नाश क्लेशोंके समान कहागया है अर्थात् जैसे विवेक छिद्रोंमें उत्पन्न हुए भी क्लेश अन्य संस्कारको उत्पन्न नहीं करते इसी प्रकारसे व्युत्थान संस्कार भी अन्य संस्कारको उत्पन्न नहीं करते जो सब तत्त्वों व पुरुषको यथार्थरूपसे जाननेका विवेक स्वरूप ज्ञान है उसको प्रसंख्यान कहतेहैं प्रसंख्यानको व्युत्थान संस्कारोंके निरोधका उपाय वर्णन करके अब प्रसंख्यानकेभी निरोधका उपाय वर्णन करतेहैं ॥ २८ ॥

प्रसंख्यानेप्यकुसीदस्य सर्वथाविवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ॥ २९ ॥

प्रसंख्यानमें अकुसीदको अर्थात् कुत्सित विषय प्रीतिसे रहितको सर्वथा विवेक ख्यातिसे धर्ममेघ समाधि होती है२९

प्रसंख्यान ज्ञानमेंभी जो अकुसीद है अर्थात् जो प्रसंख्यानमें प्राप्त सिद्धि आदिकोंकी इच्छा नहीं करता उनको भी अंतवान् जानकर कुत्सित विषय

प्रीतिसे रहित है उसको सर्वथा विवेक ख्यातिसे धर्ममेघ[1] समाधि जिसमें केवल अशुक्ल अकृष्ण धर्म व जिसका कैवल्य फल है ऐसी समाधि प्राप्त होती है और संस्कार वीजके नाश होजानेसे फिर अन्य प्रत्ययकी उत्पत्ति नहीं होती ॥ २९ ॥

ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ॥ ३० ॥

उससे क्लेश कर्मकी निवृत्ति होती है ॥ ३० ॥

उससे धर्ममेघ समाधि लाभ होनेसे सम्पूर्ण क्लेश कर्मकी निवृत्ति होजाती है अर्थात् क्लेशके मूल कर्माशयका नाश होजाता है क्लेश कर्मके निवृत्त होनेसे ज्ञानी जीवन्मुक्त होता है फिर उसका जन्म नहीं होता क्योंकि उत्पन्न होनेका कारण अज्ञान व कर्माशयका नाश होता है कारणके नाश होनेसे कार्यरूप जन्मका नाश होताहै अर्थात् फिर जन्मकी प्राप्ति नहीं होती॥ ३०॥

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्या-ज्ज्ञेयमल्पम् ॥ ३१ ॥

तब सम्पूर्ण क्लेश कर्मरूप आवरण मलसे रहित योगीका ज्ञान अनन्त होताहै ज्ञानके अनन्त होनेसे ज्ञेय (जाननेके योग्य) जो सम्पूर्ण पदार्थ हैं वह अल्प जान परते हैं॥ ३१॥

अर्थ स्पष्ट है ॥ ३१ ॥

ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणा-नाम् ॥ ३२ ॥

उससे कृतार्थ गुणोंके परिणाम क्रमकी समाप्ति होती है ३२

---

१ कैवल्यफलरूपमशुक्लाकृष्णधर्ममेहतीति धर्म्ममेघः ।

उससे धर्ममेघ समाधिके उदय होनेसे कृतार्थ गुणोंके परिणाम क्रमकी समाप्ति होती है अर्थात् जिस ज्ञानी प्रति गुण कृतार्थ होचुके हैं उस ज्ञानी प्रति फिर गुण प्रवृत्त नहीं होते. अभिप्राय यह है कि भोग व अपवर्गके निमित्त गुणोंकी प्रवृत्ति होती है जिस ज्ञानीको भोग होनेसे अनन्तर विवेक वैराग्यसे जीवन्मुक्त होनेकी अवस्था प्राप्त हुई उस ज्ञानीमें कृतार्थ होजानेसे फिर क्षणभर भी गुण स्थिर नहीं होसक्ते अर्थात् अंत होनेकी अवस्थाको प्राप्त हो फिर उसमें प्रवृत्त नहीं होते ॥ ३२ ॥

क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ३३

क्षण प्रतियोगी अर्थात् जिसमें पर्व पूर्वक्षणोंके अभाव होनेके पश्चात् अन्य अन्य उत्तर क्षणोंके होनेका सम्बंध रहताहै वह क्रम परिणामके अंतसे ग्रहणके योग्य है ॥ ३३ ॥

परिणामका क्रम परिणामके अंतसे ग्रहण योग्यहै यह कहनेका अभिप्राय यह है कि अन्तमें जो परिणाम विशेषका प्रत्यक्ष होताहै उससे पूर्व क्षणसे पर क्षण बदलते जानेके क्रमका बोध होताहै जैसे प्रयत्नसे रक्खे जाने पर भी नये वस्त्रका कालान्तरमें पुराना होजाना विदित होता है यह पुराना परिणामका अंत है इससे यह अनुमान किया जाता है कि इस पुराना होनेके प्रत्यक्ष होनेसे पहिले भी क्षण क्षणमें सूक्ष्म सूक्ष्म पुरानता जो प्रत्यक्ष नहीं हुई होती गई है बहुत वा स्थूल होनेमें अब विदित हुई है वा होती है इसी प्रकारसे स्थूलसे सूक्ष्म होनेमें क्षण क्षण प्रति सूक्ष्मरूपसे कुछ कुछ सूक्ष्मता होनेका व अधिक होनेपर उसके प्रत्यक्ष होनेका व सूक्ष्मसे स्थूल होने आदिमें क्षण

क्षणमें सूक्ष्मरूप कुछ कुछ स्थूलता होते जाने व अंतमें स्थूलता अधिक होनेपर उसके प्रत्यक्ष होनेका अनुमान किया जाता है जैसे स्थूल शरीरका भोजनकी न्यूनता वा अन्य कारणसे जो कृश (दुबला) होना व लघु बालकको मास वा वर्षके पश्चात् देखनेमें जो उसके शरीरका बढना विदित होताहै उसका प्रत्यक्ष होनेहीके समयमें होना अनुभवसे सिद्ध नहीं होता पूर्वहीसे जो क्षण क्षण प्रतिदिन आदिमें न्यूनता व अधिकता होती है वह स्थूल होनेपर विदित होती है सूक्ष्मरूप होनेसे क्षण क्षण व दिन दिन प्रति जो बालकके शरीरमें युवा अवस्था पर्य्यंत वृद्धि होती है वह क्षण क्षण व दिन दिन प्रति विदित नहीं होती यह सूक्ष्म रूपसे क्षण क्षण परिणाम होते जाना क्रम है अर्थात् परिणामका क्रम है यह परिणाम नित्य है जो यह संशय हो कि, क्षण क्षणमें रूपान्तर होनेसे नित्य कैसे होसक्ता है? इसका उत्तर यह है कि, नित्यता दो प्रकारकी है एक कूटस्थ नित्यता जो एक रस परिणाम रहित होनेकी नित्यता है; दूसरी परिणाम नित्यता पुरुषकी कूटस्थ नित्यता है बुद्धि आदि गुण धर्मोंकी परिणाम नित्यता है परिणामको प्राप्त होजानेपर भी जिस्में तत्त्वका नाश नहीं होता वह नित्य कहा जाता है पुरुष व गुण दोनोंके तत्त्वके नाश न होनेसे दोनों नित्य हैं. अब यह प्रश्न उदय होता है कि, स्थिति व गतिके साथ गुणोंमें वर्तमान जो यह संसारहै इसके क्रमकी समाप्ति है अथवा नहीं? यह प्रश्न अवचनीय है. प्रश्नके तीन प्रकारके भेदोंमेंसे एक यह अवचनीय है वे तीन यह हैं एक एकान्त वचनीय जिसका उत्तर एकही प्रकारका होता है दूसरा विभज्य वचनीय जिसका उत्तर विभागसे कहने योग्य होता है तीसरा अवचनीय जिसका उत्तर एकान्त रूपसे एक प्रकारसे कहने योग्य नहीं होता जैसे क्या सब जगत् जो उत्पन्न है मरेगा ? उत्तर सब मरेगा, यह एकान्त वचनीयहै क्या जो जो मरेगा सब उत्पन्न होगा ? उत्तर

T

केवल जिसको ज्ञान उदय हुवा है व तृष्णा रहित होगया है वह उत्पन्न न होगा अन्य उत्पन्न होगा तथा मनुष्य जाति उत्तम है वा नहीं ? उत्तर मनुष्य जाति पशुओंसे उत्तम है देवता व ऋषियोंसे उत्तम नहीं है यह विभज्य वचनीय है यह संसार अंतवान् है ? वा अनन्त है ? यह अवचनीय है क्योंकि दोमेंसे एक विशेष कहने योग्य नहीं है परन्तु आगम प्रमाण (शब्द प्रमाण) से इसका उत्तर यह है कि, ज्ञानीको संसार क्रमकी समाप्ति है अर्थात् ज्ञानीको संसार अन्तको प्राप्त होता है अज्ञानीको नहीं होता, ज्ञानी संसार क्रमके समाप्त होनेपर अर्थात् संसारके अंत होनेपर मुक्त हो कैवल्यपदको प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥

अब कैवल्यका क्या लक्षण है आगे सूत्रमें वर्णन करते हैं—

पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थसे शून्य गुणोंका लय होना अथवा चितिशक्तिमात्र कैवल्य स्वरूपकी प्रतिष्ठा (अवस्था) है ॥ ३४ ॥

पुरुषार्थ जो मोक्ष है उससे शून्य भोग अपवर्गके अर्थ कार्य कारणात्मक जो प्रकृति रूप त्रिगुण व महत्तत्त्व आदि कार्य गुण हैं उनका क्रमसे सबका लय होजाना अथवा बुद्धि सम्बन्ध रहित केवल आत्माकी शक्तिमात्र अपने शुद्ध ज्ञान आनन्द स्वरूप अवस्थामें ईश्वरमें समाधि सिद्ध होनेसे जीवका प्राप्त होना कैवल्य (मोक्ष) है जो यह संशय हो कि ईश्वरमें समाधि सिद्ध होनेसे इस अर्थका ग्रहण सूत्र शब्दसे पृथक् (भिन्न) कहांसे होता है ? तो पूर्वही पुरुषार्थ सिद्ध होनेके लिये अष्टांग योगके वर्णनमें ईश्वर उपासना ईश्वर प्रणिधानको वर्णन किया है उस

संबन्धसे ग्रहण करना युक्त है ईश्वर अनुग्रहसे शुद्ध रूप होकर ईश्वरमें प्राप्त हो जीव नित्य आनन्दको प्राप्त होता है इसी प्रयोजनसे ईश्वर उपासना व ईश्वर प्रणिधानका विधान है ॥ ३४॥

इति श्रीपातंजले योगशास्त्रे श्रीमद्धार्मिकप्यारे-
लालात्मजतेरहीत्याख्यग्रामवासिश्रीमच्छास्त्र-
वित्प्रभुदयालुनिर्मित आर्य्यभाषार्थभाष्ये
कैवल्यपादश्चतुर्थस्समाप्तः ॥ ४ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बम्बई.

T

देवीचरण कनोडियाकार

मैं थडा

कानपुर

T